नम्रतया सूचना !!

मेरे प्रिय सभ्यगणों को नम्रता से सूचित किया जाता है कि मेरी जन्म भूमि सिन्धु देश होने के कारण मेरा हिंदी भाषा लिखने का ऐसा सरल अभ्यास नहीं है इस लिये कदाचित् कहीं हिन्दी लिखने में अक्षर-शब्द-वा भाषा शैली की गलती मालूम हो जाय तो कृपा करके क्षमा करें और हंस वृत्तिसे इस पुस्तक में से तत्त्व रूप दूध का ही ग्रहण करें

भवदीय कृपाभिलाषी—गोकुलचन्द्र ॥

यह पुस्तक सनातनधर्ममण्डल करांची की सहायतार्थ -)। पांच पैसा धर्मार्थ लेकर विना मूल्य दिया जाता है ॥

॥ ॐ ॥

तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि, तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् ॥ कृ० यजु० आरण्यक प्र० १० अनु० ५ ॥

श्रीगणेशायनमः । श्रीविघ्नेश्वरायनमः ॥ श्रीविघ्ननाशायनमः ॥

॥ भूमिका ॥

प्रिय पाठक वृन्द ! ध्यान में रहे कि इस हमारे सनातनधर्म के विरोधी वितण्डावादी दुराग्रही अशास्त्रीय सम्प्रदाय के जन पूर्वकाल से चले आते हैं और अपनी माया रूपी वंचना शक्ति से उक्त धर्म के प्रबंधों को असत्य मानकर अनेक प्रकार के उपद्रवों से आक्रान्त [पीड़ित] करते रहते हैं परन्तु उन पक्षपातियों के विघातों से यह सनातन धर्म अद्यावधि अनवच्छिन्न अग्निदग्ध सुवर्ण की न्याईं अपनी कीर्ति रूप निर्मल कान्ति से प्रकाशवान् ही रहा, प्रत्युत वेही द्वेषी निर्मूल हुए। और समय २ के अनुसार अनेक मत तथा पंथ जो श्रुति स्मृति विरुद्ध प्रसरित हुये वे भी घोर रजनी में खद्योत (खुद् खुबीरे) के तुल्य अपना चमत्कार चमकाय क्षणिक अंधकारके साथ ही लय हो

गये । अब इस वर्तमान काल में आधुनिक नवशिक्षित युवक जन समाजी भाई जिन्हों की बुद्धि में विपरीत भाव का आवेश हो रहा है वे सनातनधर्म निर्बंध ग्रंथ कृत्य रीतियों को केवल कल्पित मानकर अपनी प्रमत्त उक्ति युक्ति कपोल कल्पना को सत्य मान रहे हैं, और शास्त्र विरोधी जनों के मिथ्या प्रलाप कूट निर्बंधों को सार्थक मानकर प्रत्यय कर बैठे हैं, प्रत्युत उन्हीं अघटित घटना प्रपञ्च निबन्धों को बार २ मुद्रायन्त्रों द्वारा प्रवर्तन कर रहे हैं तथा यत्र २ विद्वद्वरिष्ठों ने दंश दिया वा निरुत्तर किया उन पंक्तियों को छोड़कर स्वकल्पित उक्ति युक्ति स्थापित कर रहे हैं । महा शोक है? कि इसी सनातन धर्मावलम्बियों के वंश में उत्पन्न होकर प्रथम अपने ही सनातन धर्म रूपी वन को व्यर्थ वितंडा वाग्जाल कुठार से छेदन कर रहे हैं! और पूर्व ग्रंथ कर्ता ऋषिगण तथा निज पूर्वज आचार्यों को अल्पज्ञ मानकर अपने ही विशिष्ट वृद्धों का उपहास कर रहे हैं । यद्यपि अनेक वार प्रत्येक सनातनधर्म सभाओं से ये वितंडावादी निरुत्तर हो चुके हैं तथापि—"जानत हैं बूझत नहीं लानत ऐसी जिन्द । तुलसी इस संसार को हुआ मोतिया विंद" इत्यादि केवल हठ मात्र स्थित होकर अनभिज्ञ साधारण जन समूह को सन्मार्ग से च्युत करने की कोशिश कर रहे हैं सो अब इन्होंके अस्थिर कुतर्क

रूप वाग्जाल को श्रुति स्मृति आदि धर्म शास्त्रोंके
प्रवल प्रमाण और अकाट्य युक्ति युक्त इस "श्रा-
द्ध पितृमीमांसा" नाम पुस्तक रूप वज्र से निर्मूल
छेदन करने के लिये श्रीमान् क्षत्रिय कुल भूषण स-
द्धर्म प्रचारोत्साही उदार चित्त सेठ जी प्रते निज
प्रेम पूरित प्रबंध करने में कोटिशः धन्यवाद देकर
१ * गुप्त नाम से सन्मान पत्र अर्पण किया जाताहै॥

सन्मानपत्रम् ॥

सद्धर्ममार्गं परिपोषविधावतन्द्रः ।
ठट्ठा प्रजाऽधिपति कश्चित् क्षत्रिवीरः ॥
सत् श्राद्ध मण्डन मकार यदाज्ञयादः ।
सच्छास्त्रसिद्धनयसंहृतसर्ववादः ॥१॥

अर्थात्–श्रेष्ठ धर्म मार्ग के पालन विधिमें आ-
लस्य रहित "ठट्ठा" नाम प्रजके अधिपति क्षत्रिकुल
में वीर किसी एक पुरुष ने पूर्ण प्रेम से, सम्पूर्ण कु-
तर्कों के निवारण करने वाले श्रेष्ठ शास्त्रों से सिद्ध
किये गये युक्तियुक्त इस "श्राद्ध-पितृ-मीमांसा"
नाम पुस्तक के रचनार्थ (सर्वोपकार होने में) आ-
ज्ञा की ॥१॥ सो–

१ * जिस क्षत्रिय वीर सेठ जी ने ऐसे परमार्थ रूप उ-
त्तम दान में अपना नाम प्रसिद्ध (प्रगट) न कराने में पूर्ण
उदारता दिखलाई है, अर्थात् "गुप्तदान महापुरुष" का ही
अनुसरण किया है । इस लिये सेठ जी के कहे अनुसार नाम
प्रगट नहीं किया गया है ॥

दुस्तर्कमानव पराकृतशास्त्रसिद्धश्राद्धप्रयोग सम नुष्ठितसिद्धिसाधुम्। संदर्भमेतदखिलंरचयामिनूनं ठठ्ठाव्रजाधिपतिक्षत्रिवरेणयुक्तः ॥२॥

शास्त्र विरुद्ध खोटे तर्क करने वाले मनुष्यों से दूर किये गये जो वेदादि श्रेष्ठ शास्त्र सिद्ध "श्राद्ध कर्म प्रयोग" उन के अनुष्ठान को पुनः सिद्ध करने वाले इस संदर्भ अर्थात् व्याख्यान रूप लघु ग्रन्थ को ठठ्ठा नाम व्रजके अधिपति श्रेष्ठ क्षत्रिय की आज्ञा से निश्चय पूर्वक रचता हूं * ॥२॥

सो यह—

"ठठ्ठाव्रजस्थितसुधर्म सभास्थसभ्य-
विप्रेणवीरभान्वात्मज तद्विलेखि ॥
श्राद्धीयकर्मणि कुतर्किकृतानुयोग-
स्तस्योत्तरंभवतु आस्तिकवर्यतुष्टयै" ॥३॥

ठठ्ठा नाम व्रजमें स्थित सनातन धर्म सभाके संरक्षक सभ्य श्रीवर पं० वीरभानु धर्मात्मज ब्रा-ह्मण करके लिखा गया (श्राद्ध कर्ममें कुतर्कि लोगों

---

* यद्यपि मेरे प्रिय सिंधी भ्राताओं को सुगमता से समझने के कारण यह पुस्तक मैंने सिंधी भाषा में ही रचा था जिसकी सूचना मेरे बनाये "आधुनिक महर्षिकी पोल" और "वेद संज्ञा विचार" इन दोनों ट्रैक्टों के पिछारी में छपाई गई थी परन्तु यन्त्रालय वालों से सिंधी भाषा की भाषा शैली ठीक शुद्ध न छप सकने के कारण पुनः यह हिन्दी में ही होना ठीक समझ कर हिन्दी में छपाया गया है इस लिये मेरे सिंधी भाई मुझे क्षमा करें ॥

से किये गये मिथ्या कुतर्कों का) सत्य समाधान रूप उत्तर आस्तिक जनों के प्रसन्नतार्थ होय ॥ ३ ॥

हे श्रीमान् ! आप सनातनधर्म रक्षक के कर कमलों में श्रीनंदनन्दन के प्रसाद रूप, तथा आशीर्वाद की कुसुमाञ्जली रूप यह "श्राद्ध पितृ मीमांसा' नामक ग्रन्थ अर्पित है। जैसा है आप का है लीजिये ॥

शान्तिरस्तु ! आरोग्यमस्तु !! आयुष्यमस्त !!!

तदीय सार्वदिक शुभचिन्तक गोकुलचन्द्र ।

॥ ॐ ॥

सत्यमेव जयतिनाऽनृतम् ॥

उत्तिष्ठतजाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत ॥

नहिसत्यात्परोधर्मो नाऽनृतात्पातकंपरम्॥

ॐ

"एकं विवेकं नुमः"

॥ प्रार्थना ॥

ओ३म् नमः श्रीरामृव्रसदा शिवाय ॥

ओ३म्-सहनाववतुसहनौभुनक्तुसहवीर्यंकरवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै ॥ १ ॥

ॐ श्रुतिनिगदितधर्मार्कः स्मृतिगतधर्मारुणोदयःशश्वत्। पौराणिकधर्मोढः पाखण्डध्वान्तनाशनोजयतु ॥२॥

शुक्लांब्रह्मविचारसारपरमामाद्यांजगद्व्यापिनीम्। वीणापुस्तकधारिणीमभयदांजाड्याऽन्धकारापहाम्॥ हस्तेस्फाटिकमालिकां विदधतींपद्मासने संस्थिताम्। वन्देतांपरमेश्वरीम्भगवतीं बुद्धिप्रदांशारदाम् ॥ ३ ॥

दोहा धन यौवन उड़ जांयगे, जैसे उड़त कपूर।
मन मूरख गोविन्द भज क्यों चाहे जगधूर ॥

सभ्यो ! आज मैं आप महोदयों के सन्मुख शास्त्रोक्त श्राद्ध कर्म पर विचार करने के निमित्त उपस्थित हुआ हूं । आप इस बातको उत्तमता से जानते हो कि मैं न कोई ऐसा व्याख्यान दाता हूं और न महामहोपाध्याय हूं तथा न कदापि इस कार्य को पूर्णतया करने में समर्थ हूं, परन्तु आप धर्म वीरों के उत्साह और [परब्रह्म सच्चिदानन्द कंद श्रीकृष्णचन्द्र जी] की सहायतासे साधारण आस्तिक जनों के सदेह निवृत्यर्थ धर्मरक्षक कतिपय क्षत्रिय-वरों की आज्ञाको शिरोधार्य करके, अपना ही कर्तव्य समझ कर प्रश्न-उत्तर रूप में विविध गहन संदेहोंके निर्मूल करने वाले इस "श्राद्ध पितृ मीमांसा" नाम ग्रंथ को श्रीसद्गुरु निखिल शास्त्र निष्णात [श्रीबालराम जी] (उदासीन) एवं विद्यावाचस्पति विद्वद्वर पं० [श्री भीमसेन शर्मा जी] शास्त्री विद्यावारिधि विद्वद्वर पण्डित [श्री ज्वालाप्रसाद जी] मिश्र तथा कूर्माचल भूषण ऋषिकुल संस्थापक वाग्मिवर पंडित [श्री दुर्गादत्त पन्त जी] आदि महामहोपदेशकों की पूर्ण कृपासे एवं उन्हीं के युक्ति युक्त सिद्धान्तानुसार अलंकृत करके आप धर्म रक्षकों के कर कमलों में प्रेम से अर्पण किया जाता है आशा है कि हर्ष पूर्वक इस रत्नको आदि से अन्त तक अवश्य देखकर (पढ़कर) सद्धर्म का पूर्ण लाभ लेकर दीन को कृत कृत्य करेंगे ।

प्रार्थी—गोकुलचन्द्र शर्मा ।

॥ ॐ ॥

नमोऽन्तर्यामिणे

अथ श्राद्धपितृमीमांसा ।

प्रथमोऽध्यायः ।

"धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः" मनु० ॥

प्रश्नकर्ता समाजी महाशय
और
उत्तरदाता सनातनी पण्डित

समाजी—श्री पण्डित जी महाराज ! दयापाले मेरे इस संदेह का निवारण करो कि "श्राद्ध" क्या है ? अर्थात् श्राद्ध किस-कर्म का नाम है और इस का रहस्य क्या है ?

सनातनी—महाशय जी ! आप यदि सनातन एवं वेदोक्त श्राद्ध समझने की सच्ची अभिलाषा करते हो तो मैं आप को प्रबल प्रमाण एवं अकाट्य युक्तियों से श्रेष्ठ शास्त्रोक्त श्राद्ध का भावार्थ और उसका रहस्य भी सुनाना चाहता हूं । जिसको सुनकर और पूर्णतया समझकर तथा अपने अन्य मित्र समाजी भाइयों को भी समझाकर इस श्राद्ध कर्म [पितृयज्ञ] का शास्त्रानुकूल श्रद्धा से अनुष्ठान करके सद्धर्म एवं मोक्ष का पूर्ण २ लाभ लेकर दुर्लभ इस मनुष्य देह को साफल्य करें, यही मेरी दृढ़ आशा है ।

अथैतन्मनुः—(श्राद्धमिति शब्दो वाचको यस्य तत्कर्म श्राद्धशब्दम् इति–मदनपारि

जातः) श्राद्ध शब्दं कर्म प्रोवाच प्रजानिःश्रेयसार्थं तत्र पितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थे मासि मासि कार्यमपरपक्षस्याऽपराह्णः श्रेयान्॥

इत्यादि आपस्तम्बीय मनु सम्मत वचनों से मृत पितरों के निमित्त पितृ देवों के पूजनार्थ होम, पिण्डदान आदि ब्राह्मण भोजन रूप जो सत्कर्म, यही शास्त्रोक्त श्राद्ध शब्दका मुख्य भावार्थ है। तात्पर्य यह कि प्रजाके कल्याणार्थ वेदार्थ ज्ञाता श्री महर्षि मनु महाराजने एक ऐसे शुभ कर्मका उपदेश किया है कि जिसका नाम "श्राद्ध" वा "पितृयज्ञ" है। सो,जैसे देवयज्ञ में इन्द्रादि देवताओं का पूजन सत्कार होता है और आहवनीय अग्नि उन के तृप्त्यर्थ होम का आधार है-तैसे इस पितृ यज्ञ में पितर देवोंका पूजन सत्कार और इन्होंके तृप्त्यर्थ होम का आधार अग्नि के जगह ब्राह्मणों का मुख है। यह कर्म महीने२ करना चाहिये और इस कर्म के अनुष्ठान में कृष्णपक्ष का अपराह्ण (मध्यान्ह) काल अत्यन्त श्रेष्ठ है। तथा—"अपर पक्षे श्राद्धं कुर्वीत" इति कातीयश्राद्धसूत्रे। कातीय श्राद्ध सूत्रमें कहा है कि कृष्णपक्ष में श्राद्ध करे। तथा शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि जिस दिन न पूर्व में और न पश्चिम में चन्द्रमा दीखे उसी दिन पितरों के निमित्त पिण्डदान करे। एवं—

"अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यन्ति तदहः पिण्डपितृयज्ञं कुरुते"॥

आपस्तम्बीय श्रौत सूत्र
तथा कात्यायन श्रौत सूत्र ४।१।१—
प्रथम प्रश्न, तृ० पटल ७ कं० ॥

"अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्राऽदर्शनेऽमावास्याम्" ।

अर्थात्–दो प्रहरों के बाद जिस दिन चन्द्रमा देखने में न आवे, उस अमावास्या में पिण्ड पितृ यज्ञ करे। प्रयोजन यह कि विवाह और यज्ञोपवीतादि के तुल्य एक खास कर्म का नाम "श्राद्ध" वा पितृयज्ञ है। इसी श्राद्ध में जो जो कृत्य जिस २ प्रकार करना चाहिये और इस श्राद्ध के जितने अवान्तर भेद हैं वे सब श्रुति स्मृति श्रौत गृह्यसूत्र और इतिहास पुराणादि में अति प्राचीन समय से विस्तार पूर्वक लिखे हुए हैं जिन्हों के अनुसार अनादि काल से पद्धतियां भी चली आती हैं। जिस कृत्य में अद्यपर्यन्त किसी भी आस्तिक को कदापि संदेह नहीं होता कि श्राद्ध किसको कहते हैं? परन्तु अब अनुमान ३० वर्षों से किन्हीं आसुरी सम्प्रदायों के मनुष्यों ने स्वधर्म मर्माऽनभिज्ञ स्वयं भी धर्म से च्युत और अन्य आस्तिक साधारण जन समूह को भी कलिकालके प्रभाव से अधोगति में पहुंचाने के लिये प्रत्यक्ष नेत्रोंमें धूलझोंकते हुए केवल धींगा धींगी

से यह प्रकट किया है कि जीवित माता पिता की सेवा करने का नाम श्राद्ध है । परन्तु इसके लिये लेख प्रमाण वा प्रबल युक्ति इन्हों के पास कोई नहीं । सो अब यह कटता भी जाता है । सारांश यह है कि जैसे विवाह यज्ञोपवीतादि एक२ विशेष विधिसहित कर्म के नाम हैं वैसे ही श्राद्ध-भी एक कर्म का नाम है-और जो (श्रद्धया क्रियते तच्छ्राद्धम्)„ श्रद्धासे किया जाय वह श्राद्ध है" ऐसा अर्थ करके समाजी लोग श्राद्ध को यौगिक मानते हैं वे लोग यह तो बतावें कि वे अश्रद्धासे अपने कौन २ काम करते हैं? यदि समाजोत्सव व्याख्यानादि सभी काम श्रद्धा से करते हैं तो तुम्हारे सभी कामों का नाम श्राद्ध हो गया फिर यह क्यों कहते हो कि„ जीवित माता पिता की सेवा का नाम श्राद्ध है" । क्या मद्य मांस खाने पीने वाले आर्य्य समाजियों का मांस मद्य खाना पीना आदि काम तुम्हारे मत में श्राद्ध नहीं है? क्या उन कामों को वे अश्रद्धा से करते हैं? तथा यदि कोई आ० समाजी महाशय किसी समय प्रारब्ध कर्मानुसार रोग ग्रसित हो जाय तो फिर जब वह महाशय अपने रोग के शान्त्यर्थ दवा औ-षध) वा अन्य कोई उपाय करे तो क्या वो अश्र-द्धा से करेगा? क्या अपने शरीर के आरोग्यतार्थ उपाय करने में उसको श्रद्धा प्रेम न होगा? अर्थात् वह रोगी समाजी अवश्य ही श्रद्धा से अपने शरीर

रक्षा के लिये उपाय करेगा-तब तो उस महाशय के श्रद्धा प्रेम से किये हुये उस उपाय को भी "श्राद्ध" कहना पड़ेगा। क्योंकि उसने श्रद्धा में उपाय किया एवं आ० समाजी अपने शरीरपोषणार्थ जो भोजन करते हैं-सो वह क्या अश्रद्धा से करते हैं? तथा निद्रा (नींद) करना पायखाने में जाना और शास्त्र नियमानुसार सन्तान उत्पत्ति के लिये स्व-स्त्रीसे संभोग करना इत्यादि सब कुछ वे श्रद्धा और पूर्ण चाहना से करते हैं-तो फिर इन उपरोक्त सब कर्मों का नाम श्राद्ध हुआ! फिर "श्रद्धया क्रियते तच्छ्राद्धम्" इस पक्तिका अक्षरार्थ करके सरल सनातनी मनुष्यों को क्यों नाहक भ्रमाते हो; और "जीवित माता पिता की सेवा"-यह अर्थ उपरोक्त संस्कृत वाक्य में से किन अक्षरों का है और कहां से निकालते हो? यदि कहो कि हम अनुमान से यह अर्थ निकालते हैं तो अन्य कर्म जो ऊपर दिखलाये गये, (उन्हीं को भी श्रद्धा से होने के कारण श्राद्ध कहना) ऐसा अर्थ आप लोगों के विशाल बुद्धि में नहीं समा सक्ता? अर्थात् अनुमानसे जैसा यह अर्थ कि श्रद्धा से जीवित माता पिताकी सेवा का नाम श्राद्ध वैसा श्रद्धा से उपरोक्त अन्य कर्मों को करने का भी नाम श्राद्ध हो सकता है। फिर यह क्यों वेद शास्त्र विरुद्ध अर्थ करके ठगीसे सरल आस्तिकों को सन्मार्ग से गिराने के लिये

मिथ्या मनगढत अर्थ करते हो ! कि जीवित माता पितादि की सेवा का ही नाम श्राद्ध है । इसके लिये आपके पास कोई वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है कि जिससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाय कि जीवित माता पितादि की सेवा को ही श्राद्ध कहना और न कदापि मृतकों के निमित्त दिया जाय उसको। यदि कोई ऐसा (मृतकों के निमित्त पिण्डदान के निषेध रूप) वेदशास्त्रों में से प्रमाण आप जिद्दि-यों के पास हो तो कृपा करके शीघ्र स्पष्ट (जाहिर) करके अपना मुख उज्वल करो, अथवा ऐसा साबि-त करदेने के लिये यदि कटिबद्ध न होगे तो क्या सनातनी धर्मात्मा जन यह नहीं समझेंगे कि-इन आ० समाजियों का वेदोक्त धर्म और जीवितों का श्राद्ध भकना मिथ्या हल्ला और आस्तिक संप्रदाय को धोखा देना मात्र ही है ! परन्तु शास्त्रोक्त श्राद्ध कर्म जिस किसी को भी देखना हो तो वह पार-स्कर गृह्यसूत्र आश्वलायन श्रौत सूत्र, तथा परिशि-ष्ट कातीय श्राद्ध सूत्र आश्वलायन गृह्यसूत्र में एवं शांखायन श्रौत, आपस्तम्ब श्रौत इत्यादि ग्रन्थोंमें दे-खे तो स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि "श्राद्ध" किसको कहते हैं और उसका रहस्य क्या है "श्राद्ध" कोई अप्रसिद्ध (छिपा हुआ) कर्म नहीं है जिसके लिये प्रमाण देने की आवश्यकता पड़े, तथापि वेद विरु द्ध मतावलम्बी जिद्दी मनुष्यों के मद अहंकार रूप

अंधकार को सत्शास्त्र रूपी अखण्ड सूर्य के प्रखर तेज से निवारण करने के लिये दिग्दर्शन मात्र इस प्रथम अध्याय में और विस्तार पूर्वक द्वितीय अध्याय में यथायोग्य समाधान किया जायगा कि श्राद्ध शब्द का शास्त्रों में कैसा अर्थ दिखाया गया है और उस का रहस्य क्या है ॥

यथा महर्षि मरीचि मुनिजन स्पष्ट करते हैं कि–

प्रेतं पितृंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत् प्रियमात्मनः ।
श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम् ॥

अर्थ–सात्विक भोजन जो अपने को प्रियहोय वह प्रेतयोनि में गये उस मृतक के निमित्त यथा नाम उच्चारण करके श्रद्धा से जो कुछ दिया जाय उसको ही श्राद्ध कहते हैं वा उसी कृत्य का ही नाम श्राद्ध है। तथा महर्षि पुलस्त्य मुनिजनभी स्पष्ट कहतेहैं कि

संस्कृतंव्यंजनाद्यंच पयोदधिघृतान्वितम् ।
श्रद्धयादीयतेयस्मात्तेन श्राद्धंनिगद्यते ॥
देशेकालेचपात्रेच श्रद्धया विधिनाचयत् ।
पितृनुद्दिश्यविप्रेभ्यो दत्तंश्राद्धमुदाहृतम् ॥

भावार्थ–दूध दही और घी से पकाया हुआ अन्न आदि, श्रद्धा और शास्त्र विधि पूर्वक देश काल एवं सुपात्र ब्राह्मणों का ठीक २ विचार करके पितरों के निमित्त श्राद्ध के योग्य ब्राह्मणों को जो कुछ दिया जाय उसको ही श्राद्ध कहा गया है॥ तथा श्री योगी याज्ञवल्क्य मुनिजी ने आचाराध्याय में भी–

वसुरुद्राऽदितिसुताः पितरःश्राद्धदेवताः ।
प्रीणयन्तिमनुष्याणां पितृन्श्राद्धेनतर्पिताः २६०॥
आयुःप्रजांधनंविद्यां स्वर्गंमोक्षंसुखानिच ।
प्रयच्छन्तितथाराज्यंप्रीतानृणांपितामहाः।२७०॥

अर्थ—वसु तथा रुद्र एवं अदिति सुत ये तीनों पितर जो श्राद्धके देवता हैं वो श्राद्ध करके स्वयं तृप्त हुए मनुष्यों के पितरों को भी तृप्त करते हैं। और श्राद्ध कर्ता के प्रति भी आयु, प्रजा, धन, विद्या स्वर्ग मोक्ष यथा योग्य सुख प्रदान करते हैं। इन वाक्यों से मृत पितरों का श्राद्ध सिद्ध किया है। तात्पर्य यह कि जैसे परमात्मा के सृष्टि में देवलोक आदि अन्य लोक हैं और उन्हीं के अधिष्ठाता इन्द्रादि देव हैं तैसे कर्मणा पितृलोकः बृहदारण्यक॥

दक्षिणाप्रवणो वै पितृलोकः शतपथ—१३।८।४।७॥

इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से एक पितृलोक भी स्वतन्त्र लोक है जिसके अधिष्ठाता अर्य्यमा अग्निष्वात्त एवं वसुरुद्राऽदिति सुतादि पितृदेव हैं। 'पितॄणामर्य्यमाचास्मि' श्रीमद्भगवद्गीता अ० १० श्लो० १७५

अर्थात्—पितृलोक निवासी जो अर्यमा नामक पितर है वह मेरा स्वरूप है। सो ये जो अर्यमादि पितृदेव हैं वेही इस श्राद्ध कर्म में पूजनीय देवता हैं और इन्हीं को ही वेद में देवगन्धर्वों से शतगुणित

अधिक आनन्द का भागी कहा है । * और मरण अनन्तर पुरुष किस योनि में गया है—और कौन देश में है और उसके नाम पर उस के वंशीय पुरुषों ने क्या २ शास्त्रानुकूल कृत्य किया है, इत्यादि सब कर्म के वह समालोचक हैं ? और वही पितृ देव वैदिक मन्त्रोंसे आहूत हुये मृत पितरों के वंशीय पुरुषों करके किये हुये श्राद्ध कर्म में उपस्थित होते हैं और श्राद्ध प्रदत्त आहुति तथा भक्ष्य भोज्य आदि सामग्री के सारांश(तत्व) को वासना रूप से ग्रहण करके श्राद्ध कर्ता के प्रति प्रसन्नता पूर्वक आशीर्वाद देकर वैदिक मंत्रों से विसर्जित हुये मृतपुरुषों को यथा योग्य सुख का भागी करते हैं । (यह सब आगे समझाया स्पष्ट होगा)

यद्यपि उन पितरों का स्वरूप हम इन चर्म चक्षुओं से अवलोकन नहीं कर सकते हैं तथापि शास्त्रीय

* सर्वांग, सार्वभौम, चक्रवर्ती, निष्कंटक राज्य भोक्ता, निखिल कलाविशिष्ट जो अति बलिष्ठ राजा है उसको जो आनन्द है (जिसको मनुष्यानन्द की सीमा कही जाती है) उस मनुष्यानन्द से शतगुणित अधिक आनन्द मनुष्य गंधर्वों को है। और उन्हीं से शतगुणित अधिक आनन्द देवगंधर्वों को है और उन से शतगुणित अधिक आनन्द पितृलोक निवासी पितरों को है, यह सब तैत्तिरीयारण्यक तथा बृहदारण्यक में स्पष्ट है। इस लिये वे पितृलोक निवासी पितृदेव महान् वैभव वाले समर्थ और सर्वज्ञ हैं ॥

पुरुष (अत्यन्त सत्यवादी पूर्णरीति से शास्त्र मर्यादा पालन करने वाले दृढ़ श्रद्धालु पुरुष) के मन में पितरों का अदृश्य होकर आना अथवा यों कहें कि उस पूर्ण श्रद्धावान् पुरुषको ज्ञानचक्षु से पितरों का दर्शन होना कुछ असंभव नहीं है । क्योंकि योग शास्त्र में यह विषय स्पष्ट है कि यदि काय रूपमें पुरुष संयम करे तो वह पुरुष अन्यों से अदृश्य होकर यावत् व्यवहार कर सकता है । (योग दर्शन के तृतीय विभूति पाद के २१ वें सूत्र में यह स्पष्ट है ।) तथा श्री वाल्मीकि रामायण में सती श्री सीताजी ने अपने मृत श्वशुर श्री दशरथ जी का श्राद्धभोक्ता मुनीश्वरों के देह में दर्शन किया था यह प्रसंग आगे चतुर्थ अध्यायमें स्पष्ट खोला गयाहै। इति॥

महाशय जी ! अब आपको निःसंदेह स्पष्ट ज्ञात हुआ होगा कि श्राद्ध शब्द का शास्त्रोक्त अर्थ क्या है और किस कर्म का नाम श्राद्ध है । तथा उसका रहस्य क्या है सो भी मालूम हुआ होगा ॥

इति श्री श्राद्धपितृ मीमांसायां श्राद्धशब्दार्थ तत्स्वरूप रहस्यंच प्रदर्शने प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

समाजी—श्री पण्डित जी ! यह श्राद्ध शब्द का शास्त्र सम्मत शुद्ध अर्थ तो अच्छी तरह मेरी समझ में आया परन्तु अब कृपा करके इस विषय में मुझे कुछ और ज्यादा वेद शास्त्रों के प्रबल प्रमाणों से स्पष्ट करके बतलाओ कि श्राद्ध मृतकों का ही होता है वा कभी जीवित माता पितादिका भी ?

सनातनी—महाशय जी ! यदि आप जिज्ञासु होकर इस विषय का पूर्ण रीति से वेदादि शास्त्रों द्वारा निर्णय कराना चाहते हो तो मैं भी इस तुम्हारी शंका का वेद शास्त्रों के प्रबल प्रमाण व सद्युक्तियों से निवारण करता हूं आप अब सावधान होकर और पक्षपात रूप जिद्द की लाठी को छोड़कर प्रेमसे सुनो !

"श्राद्ध" जिस कर्म का नाम है वह तो सदैव मृतकों का ही होता चला आया है और हो सक्ता है-जीवित माता पिता आदिकों की सेवा धर्म शास्त्रों में लिखे अनुसार अवश्य करना चाहिये वह पितृ मातृ सेवा एवं गुरु सेवा श्राद्ध से भिन्न एक धर्म सम्बन्धी कर्म है जीवितों की श्राद्ध पद्धति अद्यपर्यन्त बल्कि आर्यसमाजियों में भी न बनी और न छपी देखने में आती और न कभी जीवितों का श्राद्ध होना कहीं देखने में आता है। तथा

श्राद्ध कर्म की पद्धतियें जिन ब्राह्मणग्रंथ मंत्र तथा श्रौत गृह्यसूत्रों से बनी हैं उन सबों में मृतकों का ही श्राद्ध सिद्ध है। इस लिये जीवितों का श्राद्ध कहना निर्मूल केवल हठ मात्र है ॥ अब इस विषय को सिद्ध करने के लिये प्रथम मंत्र संहिता (वेद) के ही प्रमाण दिये जाते हैं। सचेत होकर सुनो।

अथर्ववेद कां० १९ अनु० २ मंत्र ४८ ॥

"उदन्वतीद्यौरवमापीलुमतीतिमध्यमा।
तृतीयाहप्रद्यौरितियस्यां पितरआसते" ॥

अर्थ—ब्रह्माण्ड के तीन लोकों में बीच का अन्तरिक्ष (भुवः) लोक कहाता है इस मध्य लोकके मंत्र में तीन भाग किये [उदन्वती द्यौरवमा] सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि ज्योतियों का प्रकाश जिसमें फैलता है इस लिये यह (अन्तरिक्ष द्यौ) कहाता है। उस में पृथ्वी की ओर का भाग जल वाला अर्थात् अंतरिक्ष (आकाश) में जो नीलापन छाया हुआ दीखता है यह सूक्ष्म जल है इस जल वाले अन्तरिक्ष भाग का नाम "उदन्वती द्यौ" है। (पीलुमतीति मध्यमा) और जल से ऊपरी आकाश का मध्यम भाग "पीलुमतीद्यौ" कहाता है। और (तृतीयाह प्रद्यौरिति) [सब से ऊपरी अन्तरिक्ष का तीसरा भाग सूर्यादि के प्रखर प्रकाश वाला होने से "प्रद्यौः" कहाता है (यस्यां पितर आसते) इसी "प्रद्यौ" नामक अन्तरिक्ष के तृतीय भाग में पितृ-

देव रहते हैं। प्रिय महाशय जी! इन्हीं पितरोंका श्राद्ध होता है। मंत्र में कहे तीसरे आकाश में रहने वाले स्थूल देहधारी जीवित पितर सिद्ध नहीं हो सकते। स्थूल देहधारी पितर पृथ्वीमें रह सकते हैं तृतीय आकाश में नहीं। इससे जीवितों का पितर होना और उनका श्राद्ध मानना दोनों अंश खण्डित हो जाते हैं। हमारा पक्ष केवल यह नहीं है कि हम मृतक का ही श्राद्ध सिद्ध करें किन्तु हमारा मुख्य पक्ष यह है कि स्थूल देहधारी अपने विद्यमान माता पितादि की सेवा का नाम श्राद्ध नहीं है। जीवित और मृत शब्दों में कई कुतर्क हो सकते हैं.जो मृत हैं वो भी जीवित हैंऔर जो जीवितहैं वे भी मृत हैं। क्योंकि जो मरे हैं वे कहींनकहीं किसी योनि में जन्म लेकर जीवित कहे जा सकते हैं। देव तथा पितरों की भी योनि हैं उन में जीवित कहना बन सकता है। और जो मनुष्यादि जीवित हैं वे भी पूर्व जन्मान्तर में मर चुकने से मृत कहे जा सकते हैं। मृत शब्द की भाषा मुर्दा नहीं है क्योंकि मुर्दा शब्द का संस्कृत शव है। इस लिये शव नाम मुर्दा शरीर का श्राद्ध करना शास्त्रों का सिद्धान्त नहीं। मुर्दों का श्राद्ध कहना उन कुतर्की लोगों का प्रलाप मात्र है। आत्मा वा क्षेत्रज्ञ न मरता है न जन्म लेता है किन्तु भूतात्मा मरता जन्मता है इस लिये [अधा मृताः पितृषु सम्भवन्तु । अथर्व० १८ । ४ । ४८ ॥]

मरे हुए प्राणी (भूतात्मा) पितृ योनि में उत्पन्न हों। इस अथर्ववेद के प्रमाण से भी सिद्ध है कि मृत नाम मुर्दे का नहीं किन्तु भूतात्मा का है। शुभ अशुभ जन्म मरण भूतात्मा के होते हैं यह अंश मैत्र्युपनिषद् के तृतीय प्रपाठक में अच्छी तरह से वर्णन किया है। यदि मृत शब्द का भाषानुवाद कोई लोग करते हैं तो यह उनकी समझ है किन्तु शास्त्रानुकूल नहीं है। इस लिखने से मेरा प्रयोजन यह है कि यदि कोई कुतर्की हमको पकड़े (कि जो लोग पितादि मर गये उन्होंने किसी योनिमें जन्म ले लिया तो वे जीवित हुये उन्हीं का श्राद्ध तुम करते मानते हो इस लिये जीवितों का ही श्राद्ध तुम ने भी माना वा मान लिया) इस लिये इस कुतर्क को पहिले से ही निर्मूल काट देने के लिये हम अपने साध्य पक्षस्थ प्रतिज्ञा का स्पष्ट व्याख्यान कर देते हैं कि हम उन पिता मातादि का श्राद्ध शास्त्रानुकूल मानते हैं और करते हैं कि जिस भौतिक शरीर से वे हमारे माता पितादि कहाते थे उस शरीर को छोड़कर अन्य किसी योनि में परिणत (प्राप्त) हो गये हों। यही उनका मरना वा मृतक कहाना है॥

तथा—मंत्रसंहिता शु० यजुर्वेद अ० १९। ६० मंत्र में अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त दो प्रकार के पितर लिखे हैं। यथा—

येऽअग्निष्वात्ताये अनग्निष्वात्ता मध्येदिवः स्वधयामादयन्ते० ॥ यजु० १९। ६० एवं

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्येदिवः स्वधया मादयन्ते० ॥ ऋग्वेद मण्डल १० सू० १५ मं० १४ तथा अथर्व० १८ । २ । ३५

ऊपर लिखे पतों पर उक्त मन्त्र वेद की तीन संहिताओं में है, यजुः संहिता में (अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त) पद हैं उन्हीं दो पदों के स्थान में (अग्निदग्ध अनग्निदग्ध) पद ऋग्वेद अथर्ववेदमें लाये गये हैं (मध्येदिव स्वधया मादयन्ते) इत्यादि पाठ तीनों वेदों में एकसा ही है इससे सिद्ध होता है कि ऋग्वेद तथा अथर्व० में जिनको (अग्निदग्ध अनग्निदग्ध) कहा है उन्ही को यजु० में (अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त)कहा है । क्योंकि ऋग्वेद तथा अथर्व में अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त शब्द उन मन्त्रों में नहीं आये तथा अग्निदग्ध अनग्निदग्ध पद यजु० में नहीं आये इस से सिद्ध होता है कि अग्निष्वात्त और अग्निदग्ध का तथा अनग्निष्वात्त और अनग्निदग्ध का एक ही अर्थ है ॥

पाणिनीय व्याकरण के अनुसार इन शब्दों का अर्थ यह है कि—

"अग्निना + स्वादिताः = अग्निष्वात्ताः । अग्निना + दग्धाः = अग्निदग्धाः ।

जलाते हुए अग्निने जिनका स्वाद ले लिया वा अग्निने जिनको जलाया वे पितर अग्निष्वात्त वा अग्निदग्ध कहाते हैं। इसीप्रकार तृतीया समासमें वेदोंमें-

लिखा अन्तोदात्तस्वर[याथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् ॥ पा० ६ । २ । १४४ सूत्र ॥ (गत्यादिभ्यः परेषां थादि प्रत्ययान्तानामुत्तरपदानामन्त उदात्तो भवति ॥)] इस सूत्र से सिद्ध होता है। सूत्रार्थ यह है कि-गति कारक और उपपदसे परे थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र, और क प्रत्ययान्त उत्तर पदों को अन्तोदात्त हो, इससे अग्नि करण कारक से परे ष्वात्त औ-र दग्ध इन क्त प्रत्ययान्त उत्तर पदों को अन्तोदात्त स्वर हुआ है। यद्यपि ऐसी दशा में जब कि पाणि-नीय व्याकरण के अनुसार तथा संहिताओं के पर-स्पर मेल से अग्निष्वात्त पद का अर्थ सिद्ध होगया कि जो अग्नि से जलाये गये वही पितर अग्निष्वात्त तथा अग्निदग्ध हैं तब हमको अन्य प्रमाण की अ-पेक्षा नहीं। तथापि (अधिकस्याधिकं फलम्) के अनुसार शतपथ ब्राह्मण वेद का भी प्रमाण देते हैं।

"यानग्निरेव दहन्त्स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वा-त्ताः ॥ शतपथ ब्रा० २ । ५ । २ । ७ ॥ "अर्थात्-जला-ता हुआ अग्नि ही जिनका स्वाद ले लेता है वे पि-तर अग्निष्वात्त कहाते हैं। इस शतपथ ब्रा० वेद के प्रमाणसे भी सिद्ध हो गया कि मरने पश्चात् जो अ-ग्नि से जलाये गये वेही मृत पितर पितृ यज्ञ वा श्रा-द्ध में लिये जाते हैं, मरने परही मनुष्य के शरीर अग्नि से जलाए जाते हैं, तथा जो जलाए गये वे जीवित नहीं रह सक्ते हैं इससे श्राद्ध में मृत पितरों

का ही ग्रहण मन्त्र संहिता के प्रमाणों से सिद्ध हो चुका। ऋग्वेदादि भा० भूमिका पुस्तक के पितृयज्ञ प्रकरण में स्वामीदयानन्द जी ने अग्निष्वात्त शब्द का अर्थ यह किया है कि "अग्नि को अच्छे प्रकार जिसने ग्रहण किया है वे अग्निष्वात्त कहाते हैं"। यह अर्थ संहिताओं के परस्पर मेलसे तथा शतपथ ब्रा० वेद से और पाणिनीय व्याकरण इन तीनों से विरुद्ध है। उक्त स्वामीजी की प्रतिज्ञा उसी भूमिका पुस्तकमें यह थी कि महीधरादि भाष्यकारों का किया हुआ वेदार्थ शतपथादि से विरुद्ध है और हमारा किया अर्थ शतपथादि ब्राह्मण भाग के अनुकूल होनेसे सर्वथा ग्राह्य होगा सो वह प्रतिज्ञा अब निर्मूल हो गई, स्वमुखसे स्वात्मश्लाघा करनी मानो विद्वत्ताको शर्माना है स्वामीजी की सत्यप्रतिज्ञाकी, एवं संस्कृत में विद्वत्ता की और सत्यवादीपने की तो बात ही क्या कही जाय! आपतो पूर्ण संस्कृतज्ञ, सत्यवादी और पूर्ण त्यागी महर्षियों में मुकुट थे इसीलिये तो आप ऋषिजीकी सेवा में "आधुनिक महर्षिकी पोल" नामक एक ट्रैक्ट भेंट की गई है कि जिस में आप श्री की विद्वत्ता का पूरा २ गान किया है अस्तु तात्पर्य यह कि स्वा० द० जी का किया अग्निष्वात्त शब्दका अर्थ शतपथ ब्रा० से, संहिता से तथा पाणिनीय व्याकरणसे विरुद्ध वा अशुद्ध अवश्य है जिसका समाधान वर्तमान आर्य्यमन्यों

में से कोई भी नहीं कर सकता और जो कोई गिरा पड़ा समाधान करेगा वह युक्ति प्रमाणों से अवश्य कट जायगा और अग्निष्वात्त तथा अग्निदग्ध आदि संहिता के मन्त्रों से मरे हुए पितरोंका श्राद्धवापूजन होना अवश्यसिद्ध है जिसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं। मनुष्यके मरने पर दो प्रकार की क्रिया होती है। एक तो मरे हुए मुर्दा को अग्नि में जला देना द्वितीय दो वर्षके भीतर जिन बालकों को वा कुष्ठादि (कोढ़) रोग वालों को वा जिन संन्यासी आदि के लिये शास्त्र में अग्निदाह नहीं कहा है उन को तथा जिनका अग्निदाह किसी खास कारण से न हो सके उन सबको जल वा बन में फेंक देना वा खोद के गाढ़ देना यह दो प्रकार की क्रिया होती है। ये सब अनग्निष्वात्त वा अनग्निदग्ध कहाते हैं। (अनग्निदग्ध) वा (अनग्निष्वात्त) का यह अर्थ होगा कि जो २ अग्नि से नहीं जलाए गये। उनके विषय में वेद का यह मंत्र प्रमाण है कि अथर्व० कां० १८।२।३४॥

येनिखातायेपरोप्ता येदग्धायेचोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्नआवह पितॄन्हविषेअत्तवे ॥

अर्थ—मरने पर जिनको खोदके गाढ़ दिया, जो बन वा जंगल में छोड़ दिये गए, जो अग्नि में जलाए गए तथा जो युधिष्ठिरादिके तुल्य इसी शरीरसे स्वर्ग को चले गए, हे ! अग्निदेव उन सब पितरों को हविष् खानेके लिये इस श्राद्धादि पितृकर्ममें बुलाओ।

इस मंत्रके निर्विकल्प सीधे २ अक्षरार्थसे स्पष्ट ही सिद्ध है कि मरने पश्चात् ही पृथ्वीमें गाढ़देना आदि हो सकता है इस से श्राद्ध में मृत पितरों का आवाहन करना सिद्ध है । वर्त्तमान पार्वणादि श्राद्धोंमें—

आयन्तुनः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः० ॥

अग्निमें जिनका दाहकर्म होचुका है ऐसे सोम गुणों वाले हमारे पितर देवयान अन्तरिक्ष मार्गसे इस श्राद्ध में आवें । इस मन्त्रके अर्थसे भी मरे हुए पितरोंका श्राद्ध सिद्ध है । तथा—

ये पूर्वापरागतोअपरा:पितरश्च ये । तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ अथर्व० कां० १८ अनु० २ । मं० १२ ॥

अर्थात् पूर्व जो गये और जो जा रहे हैं उन पितरोंके लिये घृतकुल्या शतधारा होकर प्राप्त होवें। यहां मृतकश्राद्ध निन्दकोंसे पूछना चाहिये कि वे यह तो बतावें कि उक्त मन्त्र में वो आपके कौन जीवित पितर हैं जो पूर्व चलेगये और जा रहे हैं? और किस तरहसे आप उन चलेगए पितरोंको घृत की आहुतियें दे सक्ते हो? क्योंकि वे तो गए और आहुति लेने वाला तो जब समक्षमें अर्थात् सामने हाजिर होता है तब ले सक्ता है सो तो उक्त मन्त्र के "ये पूर्वापरागता" इस पक्ति में वर्त्तमान क्रिया है ही नहीं वहां तो पूर्व चलेगये पितरोंका जिकिर

है-फिर आप किस रीति से उन आपके चले गये जीवित पितरों को घृतकी आहुतियें देकर मन्त्रको सार्थक करोगे ? नहीं तो इस वेद मन्त्रको प्रक्षिप्त (यानी किसी ने मिला दिया होगा ऐसा झूठा) मानो। तथा—

इदं पितृभ्यो नमोऽस्त्वद्य ये पूर्वासो यउपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्यानिषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥ ऋग्वेद अष्टक ७ अध्या० ६ वर्ग १७ मण्डल १० अनुवाक १ सूक्त १५ मंत्र २। शुक्लयजुर्वेद अध्याय १९ मंत्र ६८ ॥ कृ० यजु० कां० २ प्रपाठक ६ अनु० १२ मं० ९ ॥

अन्वयार्थः—ये (पूर्वासः) पूर्वे पितरः (ईयुः) स्वर्गंप्राप्ताः, ये च (उपरासः) उपरतव्यापाराः कृतकृत्याः सन्तः परं प्राप्ताः, यद्वा ये (पूर्वासः) यजमानोत्पत्तेः पूर्वमेवोत्पन्ना ज्येष्ठभ्रातृपितामहादयः, येच (उपरासः) यजमानजन्मन उपर्य्युत्पन्ना कनिष्ठभ्रातृस्वपुत्रादयः (ईयुः) पितृलोकं प्राप्ताः, येप्यन्ये (पार्थिवे रजसि) पृथिवी संबन्धिनि रजोगुणकार्य्येऽस्मिन् पितृयज्ञाख्ये कर्मणि (आनिषत्ताः) हविः स्वीकर्तुमागत्योपविष्टाः, ये वा(सुवृजनासु) * धनसमृद्ध्या श्राद्धादिकर्मपरासु (विक्षु) बन्धुरूपासु प्रजासु (नूनं) निश्चयेन (आनिषत्ताः) श्राद्धादिस्वीकारायागत्योपविष्टाः, तेभ्यः सर्वेभ्यः पितृभ्यो (अ-

* " वृज्यते—परित्यज्यते दारिद्र्यमनेनेति वृजनं धनं तत् शोभनं यासां ताः सुवृजनाः, तादृशीषु" इति सायणः।

द्य) अस्मिन् पितृयज्ञाख्ये कर्मणि (नमोऽस्तु) अ-
यमाहुतिप्रदानपूर्वको नमस्कारो भवतु ॥

भाषा—(ये पूर्वासः) जो हम से पूर्व हुए ज्येष्ठ भ्राता, पिता, पितामह आदि पितर और जो (उ-
परासः) हमसे पश्चात् हुए कनिष्ठ भ्राता बन्धु आदि (ईयुः) मरकर पितृलोकको प्राप्त हुए हैं, और जो (पार्थिवे रजसि) पृथिवी संबन्धी रजोगुणयुक्त इस पितृयज्ञरूप कर्म में (आनिषत्ताः) अदृश्य रूप से हविः ग्रहण करने को उपस्थित हुए हैं, और जो(सु-
वृजनासु विक्षु) श्राद्ध कममें निष्ठावाले बन्धुवर्गोंमें (नूनं) निश्चय कर (आनिषत्ताः) श्राद्धके स्वीकारार्थ उपस्थित हुये हैं, तिन सब पितरों के प्रति (अद्य) इस आरब्ध पितृयज्ञ कर्म में आहुति प्रादनपूर्वक मेरी नमस्कार होय तथा—

„आच्याजानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञम-
भिगृणीत विश्वे, माहिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो, यद्व आगः पुरुषता कराम,”। ऋग्वेद अ० ६ व० १८ मण्ड० १० अनु० १ सूक्त १५ अष्ट० ७ मन्त्र ६ शुक्ल यजुर्वेद अध्या० १९ मन्त्र ६१ ॥

अन्वयार्थः—हे विश्वे सर्वे पितरः, यूयं (जानु-
आच्य) वामजानु भूमौ पातयित्वा (दक्षिणतो नि-
षद्य) दक्षिणपार्श्वे उपविश्य इममस्मदीयं यज्ञं (अ-
भिगृणीत) साधुरयं यज्ञ इत्येवमभिष्टुत अपिच (वः) युष्माकं, यत्किञ्चिद् (आगः) कर्मवैगुण्य-

जनितमपराधम् (पुरुषता) मनुष्यत्वेन हेतुना (क- राम) वयं कृतवन्तः, हे पितरः तेन केनचिदपराधेन (नः) अस्मान् मा (हिंसिष्ट) वधिष्ट ।

भावार्थ-हे (विश्वे) निखिल पितरो ! आप(जा- न्वाच्य) वाम जानु यानी बायें घोंटु को भूमि पर निपात (खोर लगाकर) कर (दक्षिणतः निषद्य) इस अग्नि से दक्षिणकी ओर स्थित होकर (इमं यज्ञम्) इस हमारे यज्ञ को [अभिगृणीत] स्तवन यानी अं- गीकार कीजिये, और [पुरुषता] चाञ्चल्य स्वभावरूप मनुष्यपने से, आपका [यद् आगः] [कराम] जो कुछ कर्म वैगुण्ययुक्त [अर्थात् इस यज्ञ कर्म में कुछ कमी वा त्रुटि होजाने रूपी] अपराध किया हो तो तिस किसी अपराधसे [नः] हमको [माहिंसिष्ट] हिं- सन मत करो । इत्यादि

दिग्दर्शन मात्र दिखायेइन वेदमंत्रो द्वारा मृत पितरों के ही निमित्त श्राद्धादि यज्ञ कर्मों में पितृ- लोक के अधिष्ठात्री देवों का आवाहन-नमस्कारा- दि स्तुति और पूजन सिद्ध है । तथा—

"तिरइव वै पितरो मनुष्येभ्यस्तिरइवैतद्भ- वति" ॥ शतपथ ब्रा० २ । ३ । ४ । २१ ॥

अर्थात्-पितर लोग मनुष्यों से अदृश्य होते हैं और पितरों का भोजन भी अदृश्य सूक्ष्म होता है । इस कथन से भी सिद्ध है कि स्थूल देहधारी पितर होते तो अदृश्य नहीं कहे जाते । इसलिये पिण्डदा-

न संबन्ध में अदृश्य पितर कहने से वे ही प्राण शरीरी वायुकाय सूक्ष्म अदृश्य पितर लेने हैं। इस से भी जीवितों का खण्डन तथा मृत पितरों का श्राद्ध सिद्ध है। तथा—*शतपथ ब्राह्मण में पितरों के लिये प्रत्येक महीने में एक वार और मनुष्यों के लिये प्रति दिन सायं प्रातःकाल दोवार भोजन प्रजापति ने नियत किया। यदि जीवित पितरों को मानें तो वे मनुष्य ही हुए तब बताओ कि वे ऐसे कौन मनुष्य हैं जो महीने में एक वार अमावास्या के दिन ही भोजन करते हों? ऐसा मनुष्य कोई न हो सकने के कारण मनुष्यों से भिन्न मरणानन्तर पितृयोनि गये पितर ऐसे समर्थ होजाते हैं—जिनको महीने भर में एक वार ही भोजन मिलने से तृप्ति रहती कष्ट नहीं होता। इससे भी मृतकों का श्राद्ध सिद्ध है।

शांखायन श्रौतसूत्र पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण में "न जीव पितुरस्ति," अ० ४ कं०४ सू० ७॥

अर्थात्—जिसका पिता जीवित हो वह पिण्ड पितृयज्ञ न करे उस के लिये पिण्डपितृ यज्ञ नहीं है। इस प्रमाण से भी जीवित का निषेध करने से मरे पितरों का श्राद्ध अर्थापत्ति से सिद्ध है। अर्थात् जिसका पिता जीवित हो वह श्राद्ध न करे तो यह आया कि जिसका पिता मर गया हो वह पिण्डपितृ

* शतपथ ब्रा० कां० २ प्र० ३ मं० २ और ३ ये मंत्र स्पष्ट रूप से आगे अध्याय ५ में वर्णन किये गये हैं वहां देखो॥

यज्ञ करे तथा शांखायन श्रौत सूत्र साकमेध पर्वस्थ महापितृयज्ञ प्रकरण अ० ३ कं० १६ सूत्र २।

[पितृभ्यो वा सोमवद्भ्यः पितृभ्योबर्हिषद्भ्यः पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्यः]।

सोमवान्, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त इन तीन नाम वाले पितरों के लिये महापितृयज्ञ में भाग दिये जाते हैं। इन में अग्निष्वात्त पितर वोही हैं जो मरणानन्तर अग्निदाह को प्राप्त हुए। इस से भी मृत पितरोंके लिये श्राद्ध होना सिद्ध है तथा पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण कात्यायन श्रौत सूत्र २३ अ० ४ कं०१।

[प्रेतेभ्योददाति]

प्रेत नाम मरे हुए पिता पितामहादि के लिये पिण्ड देता है अर्थात् देने चाहिये। अर्थापत्तिसे आया कि जीवितों के लिये नहीं। इस से भी मरे हुओं के लिये पिण्डदान देना सिद्ध है तथा आपस्तम्ब श्रौत सूत्र पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण।

यदि जीवितपिता न दद्यादाहोमात्कृत्वा विरमेत्॥

यदि जिसका पिता जीवित हो वह पिण्डदान न करे तो होम पर्यन्त ही पिण्ड पितृ यज्ञ करके ठहर जावे। इससे भी मरे हुओं के लिये पिण्डदान सिद्ध है। तथा मानव कल्प सूत्र में लिखा है कि।

यदि दद्याद्‌ये‌भ्य एव पिता दद्यात् तेभ्यो दद्यात्॥

जिसका पिता जीवित हो वह यदि पिण्ड देवे तो जिन पितामहादि मरों के नाम से पिता देवे उन्होंके लिये पुत्र भी पिण्डदान करे अर्थात् अपने जीवित पिता के नाम से पिण्डदान न करे। इससे भी मरे हुए पितादि के लिए पिण्डदान सिद्ध है।

तथा—यजुर्वेदीय कठ शाखा के काठक श्रौत सूत्र में लिखा है कि–

„पिता पुत्रौ चेदाहिताग्नी स्यातां येभ्यः पिता तेभ्यः पुत्रो दद्यात्। पिता प्रेतः स्यात् पितामहो जीवेत् पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्पराभ्याम् द्वाभ्यां दद्यादिति ॥

यदि पिता पुत्र दोनों ने विधिपूर्वक श्रौत स्मार्त्त अग्नियों का स्थापन किया हो तो प्रत्येक अमावास्या के दिन दोनों को पिण्ड पितृयज्ञ करना चाहिये। इस दशा में जिन तीन के नाम से पिता पिण्डदान करे उन्हीके लिये पुत्र भी पिण्ड देवे किन्तु पुत्र अपने जीवित पिता के नाम से पिण्डदान न करे। और यदि पिता मर गया हो पितामह (दादा)जीवित हो तो पुत्र को चाहिये कि पिता के नाम से पिण्डदान देके जीवित पितामह (दादे) को छोड़ उससे पूर्वके प्रपितामह वृद्धप्रपितामह दोनों के लिये पिण्डदान देवे। यह विषय ऐसाही ज्यों का त्यों मनु० अ० ३ श्लो० २२० । २२१ में भी लिखा

है जिस से सिद्ध है कि मृत पितादिके लिये पिण्ड-दान होता है इसीका नाम श्राद्ध है। प्रयोजन यह कि प्रमाणों से तो अच्छी प्रकार सिद्ध है कि "श्राद्ध" मरे हुए पितादिका होता है जीवितों के सत्कारका नाम „श्राद्ध" किसी ग्रंथ से कदापि सिद्ध नहीं हो सक्ता है, इत्यलम् विद्वत्सु ॥

इति श्री श्राद्धपितृमीमांसायां मृत पितृणामेव श्राद्ध सिद्धि प्रदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

समाजी—श्री पण्डितजी महाराज ! मृतकोंकी श्राद्धसिद्धि में ये अत्यन्त प्रबल, शास्त्रप्रमाण और सद्युक्तियां सुनकर अब मेरे हृदयके संशय रूप कपाट खुल गये हैं और मुझे दृढ विश्वास हुआ है कि „श्राद्ध" मृतकों का ही होता निःसंदेह सत्य एवं वेदानुकूल है। इसलिये हम—अब इन आपके दिये शास्त्र प्रमाण रूप अस्त्रोंको लेकर अपने आर्य्यसमाजी महाशयोंको अविद्या—हठ और पक्षपात रूपी महाशत्रुओंके पञ्जेसे छुड़ाने की एवं वेदोक्त सन्मार्ग पर लाने की यथासंभव कोशिश करते रहेंगे। परन्तु हे पण्डितजी! मुझे यह तो बताओ कि पिता पुत्र का संबन्ध शरीरों के साथ है वा जीवात्मा के साथ ? । यदि शरीर के साथ मानो तो यह शरीर यहीं जला दिया राख भस्म होकर मट्टी में मिल

गया अर्थात् रहा ही नहीं उस शरीर रूप पिताका श्राद्ध पुत्र करही नहीं सकता। और जीवात्मा किसी का पिता वा पुत्र होता ही नहीं। क्योंकि जैसे जीवात्मा न स्त्री न पुरुष और न नपुंसक होता [श्रुतिः-नैव स्त्री न पुमानेष नचैवायं नपुंसकः०] वैसे ही वह किसीका पिता वा पुत्र भी नहीं होता। फिर तुम पिण्डदान का फल किस को पहुंचाते हो?। अर्थात् मरने पश्चात् उस २ पितादि को सुख पहुंचाने के लिये श्राद्धकरना व्यर्थ समझा जाता है।

सनातनी—प्रिय महाशयजी! क्या आप गुरु शिष्य पिता पुत्रादिका संबन्ध नहीं मानते? यदि मानते हो तो शरीर के साथ वा जीवके साथ, किस के साथ मानते हो? यदि कहो कि हम प्रत्यक्ष विद्यमान संबन्ध मानते हैं मरने पश्चात् किसी के साथ नहीं मानते तो यह बताओ कि स्वा० दयानन्द को स्वर्गवास हुआ कहने में प्रसन्न और नरक हुआ कहने में अप्रसन्न क्यों होते हो? तथा स्वा० द० को कोई बुरा कहे वा लिखे तो उसके साथ लड़ने को तय्यार क्यों होते हो? क्योंकि स्वा० द० का शरीर भस्म हो के पंचतत्व में मिल गया उसके साथ तुम्हारा कोई संबन्ध हो ही नहीं सकता रहा जीवात्मा सो जैसे वह किसी का पिता वा पुत्र नहीं वैसे ही वह किसी का गुरु वा उपदेशक भी नहीं ठहर सकता। इसलिये

तुम को स्वा० दयानन्द का कभी नाम भी नहीं लेना चाहिये। और यदि तुम अब उन की प्रशंसा में सन्तुष्ट प्रसन्न होते और उन को बुरा कहने वाले पर अप्रसन्न होते हो तो तुम्हारे मन से ही मरे जीवोंके साथ संबन्ध सिद्ध हो गया। यह उत्तर तो वैसा ही है जैसा प्रश्न था अब आगे आप जिज्ञासु महाशय को तत्वांश समझाने के लिये इसी अंश पर कुछ विचार लिखते हैं वह प्रश्नका समाधान भी होगा और शास्त्रानुकूल सिद्धान्त ज्ञान का हेतु भी होगा। परन्तु इस गहन विषय को आप पूर्ण ध्यान लगाकर धैर्य से सुनेंगे तो आशा है कि आप शीघ्र ही इस उच्च सिद्धान्त को ठीक २ समझ कर पूर्ण लाभ ले सकेंगे॥

„जीव वा जीवात्मा क्या है" इस विषय पर अनेक विचार ग्रंथों में मिलते हैं जिनका व्याख्यान यहां छेड़ा जाय तो एक यही बड़ा व्याख्यान चल जावे। इस लिये अधिक शास्त्र सम्मत सिद्धान्त जो वास्तव में वेदानुकूल है वही यहां कहते हैं कि—

वेदके (द्वासुपर्णा०) मन्त्रमें दो आत्मा कहे हैं इन दोनोंमें (अनश्नन्न्यो अभिचाकशीति) जो शुभाशुभ फल सुख दुःखभोग न करता हुआ केवल प्रकाश करता साक्षीरूपसे स्थित है जिसके लिये उपनिषदोंमें (साक्षीचेताकेवलो निर्गुणश्च) इत्यादि कथन लिखा गया है। सो जैसे जपा पुष्पकी छाया (झलक वा आभास) स्वच्छ कांच आदि में समीप होने के कारण पड़ने से

कांच आदि ठीक उसी पुष्पके रंग से रंगा दीखता है। उसी के अनुसार ऊपर लिखा गया साक्षी आत्मा का आभास अन्तःकरणमें पड़ता है। वास्तवमें अन्तःकरण जड़ है पर चेतन के आभास से चेतन ही प्रतीत हुआ करता है। अपने आभास द्वारा अन्तःकरण को सचेत करता है इसी लिये उपनिषदों में इस आत्मा को चेता कहा गया है। इसी चेता का नाम क्षेत्रज्ञ है यही साक्षात् ईश्वर परब्रह्म परमात्मा है। श्री गीता में लिखा है कि—"क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत!" अर्थात् सब क्षेत्र रूप शरीरों में क्षेत्रज्ञ मुझे परमेश्वर को ही जानो। तथा मनु० अ० १२ में लिखा है कि—

"योऽस्यात्मनः कारयिता तंक्षेत्रज्ञं प्रचक्षते।
यः करोतितु कर्माणि सभूतात्मोच्यते बुधैः १२
जीव संज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम्।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥१३॥
तावुभौ भूतसम्पृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एवच।
उच्चावचेषु भूतेषु स्थितंतं व्याप्य तिष्ठतः" ॥१४॥

अर्थ—जो इस सचेत शरीरसे कर्म कराने वाला है उसको पण्डित लोग क्षेत्रज्ञ कहते हैं, और जो शुभाशुभ कर्म करता है वह भूतात्मा नाम शरीर कहाता है। तथा शरीर के साथ ही आविर्भूत प्रकट होने वाला जीव संज्ञक तीसरा आत्मा उन दोनों

से भिन्न है। शरीरधारी इसी जीव रूप साधन से शरीर धारण के समय सब सुख दुःख को जानता है। वे दोनों जीव नाम महत्तत्व वा बुद्धि तथा क्षेत्रज्ञ पंचभूत रूप स्थूल सूक्ष्म शरीर से मिले हुए सब छोटे बड़े शरीरों में व्यापक परमात्मा के सहारे से ठहरे हुए हैं। जैसे सूर्य्य वा दीपकादि का बाहरी प्रकाश आंखों से दिखवाता है वैसे ही क्षेत्रज्ञ साक्षीरूप से अपनी चेतना द्वारा स्थूल सूक्ष्म शरीर से कर्म कराता है। इसी लिये उपनिषदों में ईश्वरको [चेतनश्चेतनानाम्] चेतनोंका भी चेतन कहा है। जाननेका साधन जिससे सुख दु ख जानते हैं वही जीव है और जानने वाला वा करने वाला भूतात्मा है। भूतात्मा और शरीर एक ही के नाम हैं। शरीर तीन प्रकार का है—एक स्थूल द्वितीय सूक्ष्म तथा तीसरा कारण शरीर है। यद्यपि प्रत्यक्ष में स्थूल शरीर कर्म करता हुआ दीखता है। परन्तु स्थूल वास्तव में कर्त्ता नहीं किन्तु सूक्ष्म शरीर मुख्य कर कर्म करने वाला है। स्थूल शरीर का नाम अन्नमयकोष है। प्राणमय और मनोमय कोष का मुख्य संबन्ध सूक्ष्म शरीर के साथ है। मैत्र्युपनिषद् में भूतात्मा शब्द से इसी सूक्ष्म शरीरका गमनागमन जन्म मरण के साथ माना है। यह सर्वतन्त्र नियम है कि जो पदार्थ जैसा स्थूल दीखता है वह वैसा ही ज्यों का त्यों सूक्ष्म दशा में भी अवश्य होता है। क्योंकि सूक्ष्म से ही सब स्थूल प-

दार्थ वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं और स्थूल के अंदर सूक्ष्म रहा करते हैं। जैसे स्थूल वृक्ष अपने सब अंशों सहित प्रत्येक बीज (आम की गुठली आदि) में विद्यमान रहता है और आम आदि के पेड़ (थुर) में आम के फल और बीज का भी सूक्ष्म कारण विद्यमान है वैसे ही मनुष्यादि के स्थूल शरीरों के भीतर सूक्ष्म और कारण शरीर विद्यमान हैं। यही सूक्ष्म शरीर नामक भूतात्मा देव–मनुष्य और तिर्यग् आदि योनियोंमें जाता है यही देव–पितर बनता है इसीके साथ जीवसंज्ञक महत्तत्व भी तिरोभूत दशामें मरणानन्तर रहता है। सूक्ष्म शरीर के साथ स्थूल शरीर का ऐसा ही संवन्ध है जैसा घी के साथ दूधका है। अर्थात् स्थूल का साररूप घृतके जगह पर सूक्ष्म शरीर है और घृत के निकल जाने पर जो दशा दूध की होती वही दशा सूक्ष्मशरीर के निकल जाने पर स्थूल देह की हो जाती है। और जब तक दोनों मिले हुए हैं तब तक दूध के समान हैं। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर का सार (तत्व) है इसकी सिद्धि के लिये छान्दोग्य उपनिषद् में स्पष्ट ही खोलकर लिख दिया है। तद्यथा—

„दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवति ॥१॥ एनमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समु-

दीपति तन्मनो भवति ॥ २ ॥ अपाथं सोम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति स प्राणो भवति" ॥३॥ इत्यादि छान्दो० प्र०६।खं०६॥

हे सोम्य श्वेतकेतु ! जैसे दही के मथने पर जो सूक्ष्म सार भाग ऊपर आजाता वह घी होता है वैसे ही खाये हुए अन्न का जो सूक्ष्म सारभाग उदर से ऊपर हृदयादि में आ जाता है वह मन होता है। इस से मन आदि सूक्ष्म शरीर स्थूल देहका सार होना स्पष्ट सिद्ध है। यही सूक्ष्म शरीर देव पितृ आदि योनियों में जाता है। इसी भूतात्मा नामक सूक्ष्म शरीर के साथ पिता पुत्रादि सब संबन्ध मरणाऽनन्तर भी रहता है और सूक्ष्म शरीर में सब अंगोपाङ्ग वैसे ही बने होते हैं जैसे स्थूल में हैं। हरएक वस्तु अन्य दशा में पहुंचने पर भी अपने संबन्ध को अपनी आकर्षण शक्ति से खेंचता है और वह खिंचा हुआ वहीं पहुंच जाता है। वैसे ही सूक्ष्म शरीर जहां जिस योनि में जन्म लेता वहां अपने स्थूल शरीर के परमाणुओं को खेंच कर फिर नया शरीर बनाता है। इत्यादि सब का सारांश यह है कि जीवात्मा कर्मानुसार स्थूल देह को छोड़ कर सूक्ष्म देहसे कड़ा होकर अन्य २ योनियों में जन्म लेता है और सूक्ष्म शरीर को भी वह जीवात्मा तब छोड़ता है जब कि वह संसार की वासना (अर्थात् बंधन रूप संकल्प विकल्प आदि कामनाओं) से निवृत्त होकर निर्वाण

पद (मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। इस लिये हरएक आस्तिक को चाहिये कि अपने वेद शास्त्रों के आज्ञानुसार शास्त्रविधि से अपने माता--पिता=गुरु आदिकों के सूक्ष्म शरीरोंसे मुख्य संबन्ध मानकर अवश्य ही उन मृत प्राणी के सुख प्राप्त्यर्थ और उन की सद्गत्यर्थ यथाशक्ति एवं पूर्ण श्रद्धासे अन्न--जल आदिसे विधिपूर्वक सत्कार (श्राद्ध) करना चाहिये। और जब कि [आत्मावै पुत्र नामासि०] [आत्मावै जायते पुत्रः] इत्यादि श्रुति और [गर्भो भूत्वेह जायते] [भार्या पुत्रः स्वकातनू:०] इत्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद एकता संबन्ध स्पष्ट दिखाया गया है तो फिर धिक्कार है उन्हों को जो फूट रूप भेद डालते हुए भी यह कहते रहते हैं कि हम ही माता पितादिके सच्चे सेवक और देश भक्त हैं। वाहरे सुपात्र पुत्र ! और देश भक्तो !! क्या यह दलील देना तो नहीं चाहते हो कि पितादि ने बुरे कर्म किये तो उन को अपने कर्मानुसार ईश्वरव्यवस्था से दुःख मिलना नियत है तब पुत्र यदि उनको दुःख से छुड़ाना चाहता है तो ईश्वर की व्यवस्था नष्ट होगी, ईश्वर की इच्छासे विरुद्ध होगा। यदि तुम्हारी ऐसी दलील है तो जीवित माता पिता गुरु आदि की सेवा शुश्रूषा भी तुम लोगों को नहीं करनी चाहिये। क्योंकि पिछले जन्म के कर्मों का जैसा २ शुभाशुभ फल ई-

श्वर ने उनको देना नियत किया है उस ईश्वरीय व्यवस्था में बाधा डालने वाले तुम क्यों नहीं हुए! ऐसी दशामें जीवित माता पिता की सेवा भी तुम को छोड़ना क्यों नही पड़ेगी ? ॥ अर्थात् अवश्यही इस तुम्हारी दी हुई दलील से जीवित माता पितादि की सेवा शुश्रूषा छोड़ना पड़ेगी। तो फिर बताओ कि आप कैसे माता पितादिके सेवक और देश भक्त हुए ? और क्या अपने मृत पितादिकों की मिलकियत (धन माल) के मालिक होने के लिये तो ठीक २ उस मृतक पितादि से संबन्ध मानकर अपने को उसका हकदार बताओ परन्तु उस मृत पितादि के लिये शास्त्र आज्ञा से किंचित् जल और अन्न मात्र दान करनेमें बहाने और कुतर्क करते हो! वाहरे कृतघ्न आर्य्यभासियो ! अफ़सोस ! और लज्जा !!! देखो तो सही कि अन्य धर्मी मुसलमान बादशाह शाहजहां अपने पुत्र औरंगजेब से हिन्दुओं की मातृ पितृ भक्ति की प्रशंसा करते हुए तथा हिन्दुओं के प्रति धन्यवाद देकर यह कहते हैं कि—

„ए पिसर तो अजब मुसलमानी।
जिन्दगांरा व आब तरसानी॥
आफरीं हिन्दुआंरा सदबार।
मुर्द गांरा दिहन्द दाय में आब" ॥ ॥ ॥

इत्यलम् विद्वत्सु ॥

इति श्री श्राद्ध–पितृ मीमांसायां मृत संबन्ध निरूपणे तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

समाजी—श्री पण्डित जी महाराज! अब मेरे हृदय के संदेह निवृत्त होते जाते हैं। आपने बहुत अच्छे ढंग से एवं धर्म शास्त्रोंके प्रबल प्रमाणोंसे मृतकों के साथ [अर्थात् अपने मृत माता पितादि रूप पितरों के सूक्ष्म शरीरों से] संबन्ध होना ठीक २ सिद्ध किया इसलिये मैं आप को अनेक धन्यवाद देकर फिर प्रार्थना रूप में यह भी पूछना चाहता हूं कि कर्मानुसार उच्च नीच योनि में प्राप्त उन हमारे मृत पितादि को श्राद्ध कर्म में दिया हुआ पिण्ड-भोजनादि कैसे पहुंचता है? अथवा उन को श्राद्ध भोजन पहुंचाने वाले वे कौन हैं जिन में इतनी अलौकिक सामर्थ्य है?

सनातनी—महाशयजी! ठीक आपने पूछा है यह प्रश्न इस समय बहुधा समाजी लोग सरल सीधे भोले सनातनियों से पूंछकर फूले अंगों नहीं समाते, अर्थात् इस प्रश्न का पूरा ठीक २ उत्तर व समाधान न होने से कठोर हृदय वाले एवं शास्त्रानभिज्ञ समाजी भाई उन विचारे आस्तिक एवं कोमल हृदय वाले सनातनियों को क्षण भर में घबरा देते हैं और-अपनी जय मान बैठते हैं। अस्तु जो हो॥ अब आप ध्यान देकर सुनो। जैसे गर्भिणी अबला स्व पुरुष करके दिये गर्भपोषणार्थ अन्न आदि को भक्षण कर, स्वतः तृप्त हुई अपने उदर गत

गर्भ (बालक) को भी तृप्त करती है और गर्भपोषणोपयुक्त अन्न देने वाले को भी प्रत्युपकार रूप फल से संयुक्त करती है अर्थात् उस पुरुष को भी फल भागी करती है। तैसे ही श्राद्ध के देवता जो वसु रुद्र आदितिसुतादि पितर हैं वह श्राद्ध करके तृप्त हुए स्वसंगत पितरों को भी तृप्त करते हैं और श्राद्ध कर्ता को भी स्वर्गादि फल से संयुक्त करते हैं इस अभिप्राय से ही—

"देवान् वै पितॄन् प्रीतान्,मनुष्याः पितरोऽनुप्रीयन्ते, तिस्र आहुतीर्जुहोति, त्रिर्निदधाति,षट् संपद्यन्ते,, ॥४॥

कृष्ण यजु० आरण्यक अष्ट०१ अध्या०३ अनु१० ॥

अर्थात् देवता रूप पितरों के तृप्त होने के अनन्तर मनुष्य रूप पितर भी तृप्त हो जाते हैं, इसी से ही प्रथम देवता रूप पितरों के अर्थ तीन आहुति करनी चाहिये और फिर मृत मनुष्य रूप पितरों के अर्थ तीन पिण्ड देने चाहिये, इस प्रकार षट् ६ संपन्न होते हैं ॥ तात्पर्य यह कि श्राद्धके देवता वसु रुद्रादि पितर श्राद्ध कर्म में—

निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथाऽऽसीनानुपासते १८९

अध्या० ३ ॥ मनु०

निर्मन्त्रित ब्राह्मणों के शरीर में अदृश्य वायुकाय सूक्ष्म रूप से प्रवेश करके पिण्ड एवं ब्राह्मण भोजनादि के तत्व * को ग्रहण करें स्वयं तृप्त होके

* शंका—किस प्रकार वे पितृदेव श्राद्ध भोजन के तत्त्व को ग्रहण करते हैं ?

समाधान—यह भी हमारे लिये कुछ आश्चर्य जनक नहीं है क्योंकि जब हम पशु पक्षि कीटों में परमेश्वर प्रदत्त अलौकिक सामर्थ्य को प्रत्यक्ष देख रहे हैं तो पितरोंके प्रति प्रदत्त अलौकिक सामर्थ्य हम को कैसे आश्चर्य जनक होगी।

अर्थात्—जैसे परमात्मा प्रदत्त अलौकिक शक्ति विशेष से हस्ती (हाथी) कपित्थ फल को भक्षण कर उस के अन्तर्गत सारांश को ग्रहण कर फिर लीद के संग यथावस्थित (जैसे आगे था वैसाही सारा विना चबाया हुआ) उस फल को निकाल देता है। और जैसे मधुमक्खियां पुष्पों से मकरन्द ग्रहण कर मधुरचना करती हुई पुष्प के किसी अंश को ह्रास (तोर) न कर उस के सारांश रूप सुगंधि को ही ग्रहण कर लेती हैं। वा जैसे जलौका (जोंक) मिश्रित रक्त में से विकृत रक्त रूप एकांश को ग्रहण कर लेती है। वा जैसे कमल के किसी अंश को भी न घटाता हुआ भ्रमर (भौरा) कमल गर्भ केशर मकरन्द का ग्रहण कर लेता है। जैसे जल मिश्रित दुग्ध (क्षीर) में से हंस पक्षी जल को पृथक् करके केवल तत्व रूप दूध को ही ग्रहण कर लेता है। और इसी प्रकार अंगुली के स्पर्श करने से लज्जावती लता (शर्म बूटी) में सकुचित होने की शक्ति भी जान लेनी। और जड़ लोहे में भी चुंबक के सन्निधान से अलौकिक शक्ति जाननी। इत्यादि यदि पदार्थों की विचित्र शक्तियों का नि-

फिर उन मृत मनुष्य पितरों को भी तृप्त करते हैं जिन के निमित्त श्राद्ध किया गया है । और श्राद्ध करने वाले पुण्यात्मा को भी यथा योग्य स्वर्गादि फल प्रदान करते हैं । इस अभिप्राय को ठीक२सिद्ध करने के लिये श्री योगीयाज्ञवल्क्य मुनि जी ने भी आचाराऽध्यायमें स्पष्ट दर्शाया है कि—

वसुरुद्राऽदितिसुताः पितरः श्राद्ध देवताः ।
प्रीणयन्ति मनुष्याणांपितॄन् श्राद्धेन तर्पिताः २६९
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्तितथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः२७०

वसु तथा रुद्र एवं अदितिसुत, ये तीनों पितर जो श्राद्ध के देवता हैं वह श्राद्ध करके तृप्त हुए—मनुष्यों के पितरों को भी तृप्त करते हैं ॥ और श्राद्ध कर्ताके प्रति भी आयु, प्रजा धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष यथायोग्य सुख प्रदान करते हैं ॥

एवं शंतनुजीने भीष्मपितामह जी के प्रति भी यही समाधान किया है कि—

आप्यायितास्ते सर्वे पुनराप्यायन्ति ॥
(महाभारते)

रूपण किया जाय तो एक यही वृहत्कथा होजाय, इसीसे इतने में ही सन्तुष्ट होना चाहिये। सारांश यह है कि इस ही प्रकार परमात्मा प्रदत्त अलौकिक शक्ति विशेष से पितर देवता भी श्राद्धीय पदार्थों के सारांश (तत्व) को ग्रहणकरलेते हैं ॥ इति ॥

सब देवता रूप पितर प्रथम आप स्वयं तृप्त होकर फिर अन्य मनुष्य पितरों को तृप्त करते हैं। तथा च—

एते श्राद्धं सदा भुक्त्वा पितॄन् संतर्पयन्त्युत।
यत्र क्वचन धर्मज्ञा वर्तमानान्हि योगतः॥

विष्णुधर्मोत्तर॥

ये जो वसु रुद्र अदितिसुत, श्राद्ध भोजन से तृप्त होकर फिर मृत पुरुषोंको तृप्त करते हैं चाहे वे मृत मनुष्य पितर किसी भी योनि में हों। क्योंकि वह धर्मज्ञ पितृदेव योग बल रूप अलौकिक सामर्थ्य से हरएक प्राणी को जानते हैं॥ इत्यादि धर्मशास्त्रोंके प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि हमारे मृत पितर अपने अच्छे वा बुरे कर्मानुसार चाहे वे किसी भी योनि में क्यों न हों तो भी उन्हों को वहां उसी ही योनि में पितृदेवों के अलौकिक सामर्थ्य से पिण्डभोजनादि श्राद्धीय पदार्थ सूक्ष्म रूप में पहुंच जाते हैं। और जो श्री दशरथ * महाराजादि जैसे अत्यन्त उत्तम पुण्य कर्मों के प्रभाव से देव पितर आदि उत्तम योनियों में गये हुए हैं वे स्वयं अग्निदेवकी सहायतासे वेद मंत्रों द्वारा आहूत होकर श्राद्ध कर्म में निमंत्रि-

* यह श्री दशरथ महाराजकी कथा आगे पंचम अध्याय में स्पष्टरूपसे वर्णन की गयी है—जहां श्री जानकी जी निमन्त्रित मुनियों के देह में अपने श्वशुर दशरथजी का दर्शन करके लज्जित होकर छिप गई थीं॥

त ब्राह्मणों के देह में अदृश्य रूप से आकर पिण्डभोजनादि का तत्व (सारांश) ग्रहण करके तृप्त होजाते हैं। इस की सिद्धि में वेद का प्रमाण यह है कि—

येऽग्निदग्धा ‡ येऽनग्निदग्धा मध्येदिवः स्वधया मादयन्ते। तेभिः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व, मंत्र १४ ॥

ऋग्वेद अ० ६ व० १८ मण्ड० १० अनु० १ सू०१५ अष्ट० ७ ॥ शु० यजु० अध्या० १८ मं० ६० में (अग्निष्वात्ता०) यह पद हैं ॥

अन्वयार्थ.—ये (अग्निदग्धाः) श्मशानप्राप्ताः ये च (अनग्निदग्धाः) श्मशानकृत्यरहितः ये च (दिवो) द्यु लोकस्य मध्ये स्वधया (मादयन्ते) तृप्ताश्चरन्ति, हे (स्वराट्) दीप्यमान अग्ने! (तैः पितृभि) तेभ्यः पितृभ्य (असुनीतिम् (प्राणयुक्तां (एताम्) भक्षण योग्या तनूं (यथावश) यथा कामं त्व कल्पयस्व।

‡ यहां पर जो अग्निदग्ध पद से जीवित पितरो का ग्रहण करें तो उन महाशयो को अवश्य ही द्वितीय अध्याय में उक्त पद की मीमांसा देख कर अपना सन्देह निवृत्त करना चाहिये॥

भाषा—हे स्वराट्-दीप्यमान अग्ने ! (ये अग्निदग्धाः) जो हमारे पितर अग्नि में दग्ध हुए श्मशान संस्कार को प्राप्त हुए हैं और (येऽनग्निदग्धाः)जो श्मशान संस्कार को [संन्यासी होने के कारण वा किसी अन्य कारण से] नहीं प्राप्त हुए हैं और (दिवोमध्ये) अन्तरिक्ष लोक में वा स्वर्ग लोक में स्वधा मन्त्र संस्कृत अन्नकी प्राप्ति सेजो (मादयन्ते) तृप्त हो कर विचर रहे हैं (तैः पितृभिः) तिन पितरों के प्रति (असुनीतीम्) प्राणयुक्त (एताम्) हवि भक्षणके योग्यता वाली इस (तनूम्) देहकी कल्पना करो जिससे (यथाकायम्) यथेष्ट यहां आकर हवि भक्षण करें । इस वेदमन्त्र के सीधे२ भावार्थसे स्पष्ट सिद्ध है कि स्वर्गादि उत्तम लोकों में जो अत्यन्त पुण्यकर्मों से गये हैं वे हमारे पितर अग्निदेव की कृपा एवं सहायतासे सूक्ष्म शोभन देह धारण करके यथेष्ट यहां हमारे पितृयज्ञ (श्राद्ध) में आकर हवि भक्षण करते हैं । इसलिये नीचे लिखे वेदमन्त्रों से पुण्यवान् समर्थ पितरों को यज्ञमें यहां बुलाने के लिये तथा मध्यम यानी साधारण पुण्यकर्म से मनुष्ययोनिमें प्राप्त एवं (निकृष्ट) पापकर्मानुसार पशुपक्षीआदि योनिमें प्राप्त असमर्थ पितरोंको वहांही उसी योनिमें तृप्त करनेके लिये वा उन्होंकी उच्चगति करने के लिये श्राद्धकर्म में अग्निदेव की प्रार्थना पूर्वक स्थापना करके उस में आहुती दी

जाती हैं अर्थात् अग्नौकरण (अग्यारी वा होम) कराया जाता है। सो यथा—

उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आवह पितॄन्हविषे अत्तवे॥ ७० । यजु०

अध्या० १९ ॥ ७० ॥

मन्त्रार्थ–(उशन्तः त्वा निधीमहि) हे अग्ने ! तुम्हारी इच्छा करते हुए हम तुमको स्थापन करते हैं (उशन्तः समिधीमहि) यज्ञ की इच्छा से तुम को प्रज्वलित करते हैं (उशन्, उशतः पितॄन्, हविषे, अत्तवे, आवह) चाहते हुए तुम, हवि चाहने वाले हमारे पितरों को इस यज्ञ में हवि भक्षण करने के लिये बुलाओ ॥ ७० ॥ और—

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ२॥ उ च न प्रविद्म। त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतञ्जुषस्व।६७॥

यजु० अ० १९ ॥ ६७ ॥

जो मेरे पितर इस लोक में हैं अर्थात् साधारण पुण्य वा निकृष्ट कर्मानुसार मनुष्य वा पशु

पश्वादि योनि में प्राप्त होकर इस पृथ्वीलोक में रहते हैं। और जो पितर इस लोक मे नहीं हैं अर्थात् अत्यन्त उत्तम पुण्य से स्वर्गादि उत्तम लोकों में हैं (च, यान्, विद्म: च, यान्, न, प्रविद्म:) और जिन पितरोंको हम जानते हैं, तथा जिन को स्मरण न होने से नहीं जानते हैं, (जातवेद:, ते, यति, त्वम्, उ, वेत्थ,) हे अग्ने ! वह पितर जितने हैं वे तुम हीं जानते हो (स्वधाभि:, सुकृतं, जुषस्व) सो पितृयज्ञ द्वारा उन पितरों के तृप्त्यर्थ श्रेष्ठ अन्न को सेवन करो,॥ ६७ ॥

यहां "इह,, शब्द से जीते पितरों का ग्रहण नहीं होता किन्तु जिन्हों ने कर्मवश इस लोक में देह धारण किया है अन्यथा " न "प्रविद्म,, इस का शब्दार्थ नहीं घट सकता "विद्म,, शब्द का अर्थ यह है कि जिनको मैं अपना पितर जानता हूं परन्तु कहां हैं यह नहीं जानता हूं अथवा जिन् को जानता हूं बाप-दादे-परदादे, जिन को नहीं जानता इक्कीस पीढ़ी तक यह तात्पर्य है ॥ तथा-

यमग्ने कव्यवाहन त्वञ्चिन्मन्यसे रयिम् । तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यन्देवत्रापनया युजम् ॥६८॥

यजु० अ० १९ ॥ ६४ ॥

हे पितरों को हव्य पहुंचाने वाले अग्ने ! तुम भी जिस हवि रूप अन्नको उत्तम जानते हो (न:,

तं, गीर्भिः, अवाय्यं युजम्, देवत्रा, आपनय) इस लिये हमारे उस वषट्कार आदि वाणियों से सुनने योग्य उचित हवि को पितृ देवताओं के प्रति सब ओरसे पहुंचाओ ॥ ६४ ॥

इत्यादि वेदमन्त्रों के आशय से स्पष्ट सिद्ध है कि अग्नि देवता भी स्वधारूप अन्नकी आहुतियोंको सूक्ष्मरूप से लेजा कर वहां पितरों के प्रति पहुंचा देता है ॥

समाजी—पण्डित जी महाराज ! यह भी तो सुनाओ कि जब यह किसी को भी मालूम नहीं कि हमारे पितर स्वर्ग में गये वा नरक में तब उन्होंको अन्न वस्त्रादि भेजना क्या विना पते के पुरुष को डांक द्वारा वस्तु भेजनेके तुल्य नहीं और ऐसी अवस्था में उन को भेजने के लिये अन्न वस्त्र ब्राह्मणों के हवाले करना और फिर उन की रसीद का न पहुंचना क्या यह सन्देह पैदा नहीं करता कि न जाने यह माल भेजने वालोंने ही खा लिया हो ? इसलिये हमारे पितरों से माल पहुंचने की रसीद न मिलनेसे हमें विश्वास कैसे हो कि ठीक २ उन्हों को मिला ?

सनातनी-महाशय जी ! यह तो मैं पहिले शास्त्र प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध करचुका हूं कि हमारे मृत पितर॰कर्मानुसार चाहे किसी भी उच्च, नीच, योनि में वा स्वर्ग नर्कमें क्यों न गये हों तो भी पितृलोक के अधिष्ठाता वसु—रुद्र—अदिति सुतादि पितृदेव

एवं अग्नि देवता भी, अपने योगबलसे तथा अलौकिक सामर्थ्य से उन पितरों को जानकर वहां ही उन्होंको तृप्त करते हुए सुखभागी करते हैं। बाकी रही हम लोगोंको पूरा २ विश्वास हो जानेके लिये उन्हों की "रसीद,,। सो यह भी ठीक नहीं क्योंकि श्राद्धका संकल्प करते ही समय रसीद लिखी जाती है कि सृष्टिके आरम्भसे वैवस्वतादि अमुक २ मन्वन्तर, चतुर्युगी,युग, सवत्सर, तिथि, वार, मुहूर्त्तादि समयमें, अमुक देशमें, अमुक वर्ण, नाम गोत्रादि, वाला मैं पुरुष वा स्त्री अमुक २ गोत्रादि वाले ब्राह्मण को अमुक २ पिता मातादि के निमित्त अमुक वस्तु वा भोजन वस्त्रादि देता हूं। वहां उस समय बैठे सब मनुष्यों की साक्षी वा गवाही लिखी जाती है। और देवता लोग भी उसमें साक्षी लिखे जाते हैं इसी विचार से मनुजी ने कहा है कि—

मन्यन्तेवैपापकृतो नकश्चित्पश्यतीतिनः ।
तांस्तुदेवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥
मनु० अ० ८ ॥

पापी लोग मानते हैं कि यहां एकान्त में हम को पाप करते कोई नहीं देखता, परन्तु यह भूल है क्योंकि उन को देवता लोग और अन्तर्यामी ईश्वर देखा करता है। जो देवादि पाप के गवाह होते हैं वेही श्राद्धादि पुण्यकर्म के भी गवाह हो जाते हैं। वह रसीद आकाशमण्डल रूप कागज में वाणीरूप स्याही से तथा वायुरूप लेखनी से लिखी जाती है।

जैसे फोनोग्राफ के छोटे से आकाशमें बोले हुए शब्द (राग) भर जाते हैं वैसे ही श्राद्धादि के दान की यह संकल्पात्मक रसीद महाकोश में भर जाती है इसीलिये पतञ्जलि मुनि जी ने शब्दों का स्थान आकाश (आकाशदेशः शब्दः), को कहा है। आकाश के ही प्रदेशान्तर में स्वर्गादि किसी योनि में श्राद्धादि दान का सुख सन्तोष प्रसन्नतादि रूप फल जब पितरों को प्राप्त हो जाता है तब यही पाने वाले के उस रसीद पर हस्ताक्षर होते हैं। और जब श्राद्ध करते ही समय वा करचुकने पर मन वाणी शरीर में वा स्त्री पुत्रादि सब कुटुम्ब में सर्वत्र कुशलता प्रसन्नता आनन्द मंगल दीख पड़े तब यही श्राद्धफल पाने की हस्ताक्षरी रसीद आगई मान लेना चाहिये अर्थात् जानो उसी आकाश मण्डलस्थ रसीद पर दस्तखत हो आये। और यदि अप्रसन्नता अमंगलादि प्रतीत हों तो मानलो कि सफल नहीं हुआ और रसीद पर दस्तखत नहीं किये तब यजमान तथा श्राद्धादि भोक्ता ब्राह्मण का शास्त्रमर्यादा से विरुद्ध करना रूप अपराध दोनों वा किसी एक का हो सकता है उस दशामें केवल ब्राह्मण का ही अपराध मान लेना भी इकतर्फी डिगरी कर देना है। अभिप्राय यह है कि रसीद नाम विश्वास हो जाने का है—यदि विदेश से आई रसीद पर भी विश्वास न हो तो वा सन्देह हो जाय कि अन्य कैसे हस्ताक्षर अन्य भी बना सकता है और फिर पत्रद्वारा पूछने पर भी उसी की ओर से लिख

सकता है कि हां मुझे रु० मिलगये तब विश्वास न हो तो यहां की रसीद भी रद्दी जानो और शब्दप्रमाण रूप वेदादि शास्त्रों पर जिनका अटल विश्वास है उन को संदिग्धात्मक रसीद की अपेक्षा (इच्छा वा जरूरत) ही नहीं है । यदि किसी ऐसे निकटवर्ती अथवा परम मित्र द्वारा कोई वस्तु समाजी मनुष्य अपने जीवित पिता के पास भेजे कि जिस का सर्वांश में पूरा २ विश्वास हो तो वहां समाजी कदापि रसीद नहीं मांगेगा और मांगे तो जानो उस घरू वा परम मित्र का पूरा २ विश्वास नहीं तब वह घरू वा बनावटी भी रसीद पेश कर सकता है । अन्तमें जबतक विश्वास न करो सभी रसीद आदि रद्दी हैं जब विश्वास दृढ़ होगया तब रसीद की आवश्यकता सनातनधर्मियों को नहीं है । और सर्वशुद्ध सनातन धर्मावलम्बियों को वेदादि शास्त्रों पर दृढ़ विश्वास है कि इस निम्नदर्शित वेदमन्त्र में अग्निदेवने हमारे पितरोंको श्राद्धान्न पहुंचाया । और इसी ही वेदमन्त्र को हमारे पितरों की तरफ से ईश्वर द्वारा आई हुई सच्ची रसीद समझते हैं और यह भी विश्वास करते हैं कि श्राद्ध करने से हमारे पितरों की तृप्ति, तथा निःसन्देह सद्गति होती है । और श्राद्ध करने वाले हम लोगों को भी यथायोग्य धन पुत्र-स्वर्गादि सुख प्राप्त होता है—यथा सच्ची रसीद रूप वेदमन्त्र—

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी, प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव–प्रयता हवींषि,,।

ऋ० अ० ६ अ० १९ मण्ड० १०अनु० १ सू० १५ अष्ट०७मं०१२ शुक्लयजु० अ० १९ मं० ६६॥ कृ० यजु० का० २ प्र०२६ अनु० १२ मं० ५ ॥

अन्वयार्थः–हे अग्ने ! त्वमस्माभिः (ईडितः) स्तुतः हव्यानि अस्मदीयानि सुगन्धीनि कृत्वा (अवाट्) अवाक्षीत् प्राप्तवानसि ऊढ्वा च (स्वधया) पितृमंत्रेण पितृभ्यः (प्रादाः) दत्तवानसि ते च पितरस्तद् हविः (अक्षन्) भक्षितवन्तः, हे जातवेदस्त्वमपि (प्रयता) पवित्राणि हवींषि (अद्धि) भक्षय ।

भाषा—हे अग्ने ! हम करके स्तुत हुये (त्वम्) आप हमारे दिये हुए हव्य को सुगन्धित कर हवन द्वारा स्वीकार किया, और स्वीकार कर फिर (स्वधया) पितृप्रिय स्वधा इस मंत्र से हमारे पितरों के प्रति प्रदान किया है अतः आप करके दिया हुआ जो हवि है उस हवि को (ते) वे हमारे पितर भक्षण करते हैं। हे (जातवेदः) दिव्यप्रकाशस्वरूप अग्ने! (त्वम्) आप भी इन शुद्ध हवियों को भक्षण करो और–

"उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुं

यईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥यजुर्वेद वाजसने० अ० १९ मं० ४९॥

अन्वयार्थः—अवरेऽास्मन् भूलोकेऽवस्थिताः पितर उदीरतामूर्ध्वं लोकं गच्छन्तु। मध्यमा मध्यमस्था अन्तरिक्षस्थाः पितरः उदीरतां परासः परलोकेषु लोकेऽवस्थिता देवत्वं प्राप्ताः पितर उदीरतां ततोऽप्यूर्ध्वं ब्रह्मलोकादिषु गच्छन्तु। कीदृशाः पितरः सोम्यासः शान्तिशीलाः सोमपानार्हा वा। ये च असुमीयुर्वायुरूपं प्राप्ताः वायुकायाः सूक्ष्मादृश्याः स्थूलविग्रहाः। अवृकाः शत्रुभावरहिताः समदर्शिनः ऋतज्ञाः सत्यज्ञा यज्ञज्ञा वा स्वाध्यायनिष्ठा वा ते नोऽस्मान्हवेषु आह्वानेषु अवन्तु रक्षन्तु इति प्रार्थयामः॥

भाषा—(अवरे) इस भूलोक में रहने वाले पितर लोग (उदीरताम्) ऊपरी स्वर्गलोक को प्राप्त हों (सोम्यासः) शान्तिशील चन्द्रलोक वासी वा यज्ञों में सोमपान करने वाले (मध्यमाः) मध्य—अन्तरिक्ष लोकस्थ पितर (उदीरताम्) ऊर्ध्वगति को प्राप्त हों और (परासः, उत्) * स्वर्गलोकस्थ

* स्वर्गादि लोकों में रहने वाले पितरोंका शरीर वायुकाय सूक्ष्म अदृश्य होता है यह बात उपरोक्त "असु य ईयुः" इस वेद वाक्यार्थ से स्पष्ट सिद्ध है कि जिन्होंने केवल प्राणमात्र को ही धारण किया है। यहां स्थूल शरीर का स्पष्ट निषेध है॥

पितर उससे भी ऊपर महर्लोकादि को प्राप्त हों— वे पितर कैसे हैं कि (असुं य ईयुः) जिन्होंने प्राणमात्र को धारण किया है अर्थात् वायुकाय सूक्ष्म अदृश्य शरीर वाले स्थूल मनुष्यादि कासा शरीर जिन का नहीं है। (अवृकाः) जिन का कोई शत्रु नहीं (ऋतज्ञाः) जो सत्य को वा यज्ञ को जानने वाले हैं (ते, पितरः) वे पितर लोग (नः) हमारी (हवेषु) श्राद्धादि में आवाहनके समय (अवन्तु) रक्षा करें यह हमारी प्रार्थना है॥

प्रिय महाशय जी ! इन दो मन्त्रों से स्पष्ट सिद्ध है कि अग्नि देवता श्राद्धकर्म में निमन्त्रित ब्राह्मणोंके मन्त्रोच्चारणसे दी हुई पितरों के निमित्त आहुतियों को हमारे पितरों के प्रति वहां पहुंचाके आया, और उन हमारे पितरों की क्रमपूर्वक ऊपर स्वर्गादि लोकों में गति होना एवं स्वर्गादि लोकों में रहने वाले हमारे सामर्थ्यवान् पितर श्राद्ध से तृप्त हो कर हमारी रक्षा करना इत्यादि सब बातों का विश्वास कराने वाली सच्ची साक्षीरूप "रसीद" जब हम को परब्रह्म द्वारा वेदादि शास्त्रों में लिखी मिली है तब हम को संसारी काग़ज़ी रसीद की कौनसी आवश्यकता है अर्थात् संसारी कागज के रसीद की उन नास्तिकों को आवश्यकता है कि जिन्होंका हमारे वेदादि धर्मशास्त्रों पर विश्वास नहीं। इस लिये कहा है कि "नास्तिको वेदनिन्दकः" जिन्हों का वेदशास्त्रों पर विश्वास

नहीं अर्थात् जो वेद की निन्दा करते हैं वेही मनुष्य नास्तिक कहाते हैं इसलिये हम लोगोंको चाहिये कि वेद से दिखाये गये शुद्ध श्राद्ध को विधिपूर्वक करके अपने मृत पितरोंकी सद्गति करें और वेद की आज्ञाको पालन करके अपने हिन्दू मनुष्यत्व को सार्थक करें यही मेरी प्रार्थना है ॥

समाजी—श्री पण्डित जी महाराज! यह तो बहुत अच्छी न्यायरूप सत्य दलील एवं वेद मन्त्रों के प्रबल प्रमाण से ठीक २ विश्वास दायक "रसीद" दिखलाई। अब मुझे दृढ विश्वास हुआ लेकिन एक बात और पूछने की है सो यह कि मृतप्राणी अपने किये पाप–पुण्य कर्मों के अनुसार यदि वह पशु, पक्षी वा यक्ष, राक्षस, पिशाच अथवा देवता होजाय तो फिर श्राद्धकर्म में हमारा दिया हुआ क्षीर, घी, हलुआ, लड्डू, पकवान कचौड़ी वगैरः पदार्थ उन्हों को कैसे देहानुकूल रुचिकर (प्रिय) होंगे? अर्थात् पशुओं को घास, सिंहों को मांस, राक्षस–पिशाचों को रुधिर और मांस एवं देवताओं को अमृत वगैरः जब अपने २ शरीरों के अनुकूल प्रिय हैं तब हमारे दिये हुए उक्त लड्डू कचौड़ी आदि पूरी पकवानों से उन्हों की कैसे रुचिपूर्वक तृप्ति होगी? अर्थात् मेरा दिया हुआ सब उन्होंके प्रतिकूल होने से वृथा हो जायगा? ॥

सनातनी—महाशय जी! घबराओ मत कुछ अपनी भी अक्ल वा बुद्धि काममें लाओ केवल प्रश्न

करने ही पर सवार न हो जाओ ? महाशय जी सुनो जब कि हमारी अंग्रेज सरकार के राज्यमें भी ऐसा अन्धेर नहीं है कि जब हम लोग, जर्मन—फ्रान्स वा जापान, रशिया वगैर: विलायतोंमें गये हुए अपने मित्र को यदि कुछ रुपया भेज देना चाहें तो क्या येही हमारे एक तोलेके वजन वाले विक्टोरिया वा एडवर्ड अथवा शहन्शाह जार्ज दी फिफ्थ के मुहर (प्रतिमा) वाले रुपये वा नोट वगैरह जो यहां पोस्ट आफिस में मनीआर्डर करके दिये जाते हैं वो क्या वहां उक्त विलायतोंमें भी हूबहू उसही मुहर वाले रुपये वा उस ही नम्बर वाले नोट हमारे मित्रको मिलेंगे वा उक्त रुपये नोट वहां अन्य बादशाहत होनेके कारण उपयोगी हो सकेंगे ? नही कदापि नही। क्योंकि जैसा २ देश और जैसी २ राज्यसत्ता होती है उस के ही अनुकूल रवाज व हुक्म मूजिब उसी ही सिक्के व मुहर के गिनी वा पाउन्ड वगैरह रूपमें हमारे मित्रको मिल जायगे और उपयोगी भी बन सकेंगे तो इसी ही रीति से परब्रह्म के अटल राज्य में पितृलोक के अधिष्ठाता वस्वादि पितर यहां श्राद्धमें पोस्टमास्टर रूप ब्राह्मणों के मार्फत हमारे पितरो के निमित्त दिये हुए लड्डू—पूरी—कचौरी वगैरह श्राद्धीय पदार्थ के सारांश को ग्रहण करके हमारे मृतपितरोंके प्रति चाहे वे किसी भी योनि में पशु, पक्षी, राक्षस, देवतादि

क्यों न हुए हों तो उसी ही योन्यन्तर्गत देहके अनुकूल करके दे देते हैं। इसलिये हमारे (आप्त) यानी पूर्ण धर्मात्मा पूर्ण विद्वान् ऋषि-मुनियों ने कलिकाल में नास्तिकों द्वारा उठने वाले ऐसे निकम्मे खोटे २ सवालोंको निर्मूल करनेके लिये और आस्तिक जनों को ज्यादा २ सन्तोष वा विश्वास दिलाने के लिये महाभारतादि धर्म इतिहासों में स्पष्ट करके लिखदिये हैं कि—

देवोयदिपिताजात: शुभकर्मानुयोगत: ।
तस्यान्नममृतंभूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छति ॥१॥
गान्धर्वेभोग्यरूपेण पशुत्वेचतृणंभवेत् ।
श्राद्धान्नंवायुरूपेण नागत्वेप्यनुगच्छति ॥२॥
पानंभवतियक्षत्वे राक्षसत्वेतथाऽमिषम् ।
दानवत्वेतथामांसं प्रेतत्वेरुधिरोदकम् ॥३॥
मनुष्यत्वेऽन्नपानादि नानाभोगरसोभवेत् ॥

महाभारत—श्रीदेवल मुनीश्वर के वचन ॥

अर्थात् यदि मनुष्य शुभकर्मानुसार मरकर देवता बनेगा तो उस को वह श्राद्ध का अन्न अमृत रूप में—प्राप्त होता है, एवं गन्धर्व जाति में भोग्य रूप से, पशुयोनि में (तृण) घास रूप से, नागयोनि में वायुरूप से, यक्षयोनि में मदिरा रूप से, राक्षसयोनि में—आमिष रूपसे, दानवयोनिमें मांस रूप से, प्रेतयोनि में रुधिर रूपसे और मनुष्ययोनि में अन्न पानादि रूपसे वह श्राद्धान्न प्राप्त होता है। इसलिये हम लोगों का जो सात्त्विक शुद्ध पवित्र

अन्न घृत-दुग्धादि प्रिय पदार्थ हैं वे ही श्राद्धकर्म में सुपात्र ब्राह्मणों के मार्फत मृतपितरों के निमित्त देना चाहिये इसलिये—शास्त्र में कहा है कि—'यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः,—अर्थात् जिस पुरुषकी जो स्वाभाविक * खुराक है वही देवताओं के प्रति भी अर्पण करे ॥

तात्पर्य यह है कि हम मनुष्यमात्र को शुद्ध सात्विक अन्न, घृत, दुग्ध, फल फूलादि खुराकसे ही श्राद्धादि शुभ कर्मों में पितृ-देवों की पूजा करनी चाहिये और उस हमारे दिये हुए पदार्थों को सूक्ष्म रूप में लेजा कर पितृदेव हमारे पितरोंके प्रति यथादेहानुकूल करके तृप्त करते हैं और हम लोगों को भी आशीर्वाद देकर आनन्द सुखका भागी करते हैं ॥ ॐ तत्सदिति शम् ॥

इति श्री श्राद्धपितृमीमांसायां मृतपितृभ्यो भोजन-प्राप्त्यर्थं शास्त्रोक्त मार्गप्रदर्शने चतुर्थोऽध्यायः ॥

---

* हम मनुष्यमात्रकी स्वाभाविक यही अन्न-घृत-दुग्ध-फल फूलादि सात्विक शुद्ध पवित्र खुराक है। और यह न समझना चाहिये कि-जो मांसाहारी मनुष्य हैं वे मांस वगैरह देवताओंके प्रति अर्पण करें—नहीं नहीं, कदापि नहीं!! हम मनुष्यमात्र की स्वाभाविक खुराक मांस वगैरह कदापि नहीं है देखो मेरा बनाया हुआ "मांसभक्षणनिषेध" नामक ट्रैक्ट कि जिस में खूब विचार पूर्वक यह सिद्ध किया गया है कि मनुष्यमात्र की स्वाभाविक खुराक अन्न है ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

समाजी—श्रीपण्डित जी महाराज ! अब कृपा करके यह बताओ कि पितृलोक इस मनुष्यलोक से भिन्न कोई अन्य लोक है क्या और वह कहां स्थित है ? तथा उस लोक के अधिष्ठातृपितृदेवोंका शरीर कैसा है और उनका राजा कौन है ? तथा हे महाराज ! दयापाल ! यह भी बताइये कि हम मनुष्य मात्र को इन पितृलोक निवासी पितृदेवों के पूजन सत्कार (श्राद्ध-तर्पण) करने की क्या आवश्यकता है ? अर्थात् श्राद्ध तर्पण न करने से क्या कोई दोष वा हानि है ?

सनातनी—महाशय जी ! ये आप के प्रश्न यथार्थ और ठीक २ हैं । अब आप श्रद्धापूर्वक क्रमसे इन प्रश्नों का वेदादि सच्छास्त्रप्रमाणों से एवं प्रबल युक्तियुक्त समाधान श्रवण करो ॥

यथा—प्रथम आप का प्रश्न यह है कि पितृलोक मनुष्यलोक से भिन्न कोई अन्यलोक है और वह कहां है ? सो हे महाशय जी देखो शतपथ ब्रा० वेद में स्पष्टरूप से दिखलाया गया है कि-पितृलोक एक स्वतन्त्र लोक है । जैसे कि—

अथ त्रयोयावल्लोका मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति । शत० ब्रा० १४ । ३ । २४ ॥

अर्थात् तीन भोग भूमियें हैं-मनुष्यलोक, पि-

तृलोक और देवलोक। इनमें जीव कर्मानुसार प्राप्त होता है। और केवल निषिद्ध कर्मों का कर्त्ता जीव नरक को ही प्राप्त होता है। इससे सिद्ध हुआ कि पितृलोक, मनुष्य और देवलोकों से जुदा एक स्वतन्त्र लोक है। तथा च—

"दक्षिणाप्रवणोवै पितृलोकः" शत० ब्रा० १३। ८।४।१॥

"कर्मणापितृलोकः" वृहदारण्यक।

दक्षिण दिशामें पितृलोक है। शुभकर्मों करके पितृलोक में वास होता है। यथा—

तेवाएन आहुतोहुते उतक्रामतस्ते अन्तरिक्षमाविशतस्ते अन्तरिक्षमेवाहवनीयं कुर्वाते इत्यादि॥ शतपथ ब्रा० ११। ६। २। ६॥

तथा—अथ ये यज्ञेन दानेन तपसालोकं जयन्ति ते धूममभिसमर्चन्ति, धूमाद्रात्रिं रात्रेपक्षीयमाण पक्षमपरपक्षान्यान् षण्मासानदक्षिणादित्य एति मासेभ्यः पितृलोकमित्यादि॥ शतपथ-

अर्थात्—मरण समयमें इस प्राणीकी तीन गति होती हैं, देवलोक पितृलोक, अधोलोक, उसमें पितृलोक का गमन कहते हैं कि—यज्ञ दानादि कर्म करने वाले मनुष्य धूप से रात्रि में कृष्णपक्ष, उस से दक्षिणायन और वहां से पितृलोक को गमन करते हैं। और जो सत्कर्मा नहीं वे कीटादि योनि को प्राप्त होते हैं। इस से स्पष्ट सिद्ध हुआ कि पितृ-

यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले पितृलोकादि उत्तम लोकोंमें जाते हैं। और पितृलोक एक स्वतन्त्र चिरकाल आनन्दप्रद लोक है। यथा—

(स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः०)

तैत्तिरीयोपनिषद् ॥

सो यह पितृलोक (विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति)

[सिद्धान्तशिरोमणी]

चन्द्रलोक के भी ऊपर है जहां पितरोंका निवास है। तथा—

उदन्वतीद्यौरवमापीलुमतीति मध्यमा। तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितरआसते।

अथर्व वेद का० १८ अनु० २ म० ॥ ४८ ॥

इस मन्त्रका सम्पूर्ण भावार्थ आगे द्वितीय अध्याय में स्पष्ट करदिया है वहां ध्यान देकर पढ़ेंगे तो अच्छी तरह ज्ञान होगा कि "प्रद्यौ" नाम वाले आकाश के तीसरे भाग मे पितृलोक है जहां पितर देव रहते हैं ॥

अब आपका द्वितीय प्रश्न है कि पितृलोक निवासी पितरों का शरीर कैसा होता है और उन्हों का राजा कौन है?

सो हे महाशय जी! इन पितृलोक निवासियों का शरीर वायुतत्व प्रधान है। यथा—

आप्यतेजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि । अथर्व० ३।१।२।२८॥

अर्थात्—जलतत्व, तेजतत्व अथवा वायुतत्वप्रधान शरीर बनकर, जीव लोकान्तरों को जाता है। पार्थिवतत्व (पाञ्चभौतिक पृथिवीतत्वप्रधान स्थूल) शरीर से नहीं जाता है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि जीव वायु आदि तत्वप्रधान शरीर धारण करके पितृ आदि लोकान्तरों में जाता है इससे वहां के निवासियों का शरीर अवश्य ही वायु आदि तत्व प्रधान है। अर्थात् वायु कायरूप वे पितर हैं। और वायु इन चर्मचक्षु यानी सांसारिक नेत्रों से देखने में नहीं आता है इसलिये ये पितर वायुतत्वप्रधान सूक्ष्म शरीरधारी होने से हरएक मनुष्य को देखने में नहीं आते हैं इसलिये वेदमें स्पष्ट दरशाया है कि—

तिरइववै पितरो मनुष्येभ्यः०—शतपथ० २।३।४।२१॥

सूक्ष्म होने के कारण वा यथेच्छाचारी होनेके कारण पितर मनुष्यों से अदृश्य छिपे से होते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि जो सूक्ष्म अदृश्य हैं जो सर्व साधारण मनुष्यों के दृष्टिगोचर नहीं होते वे पितर अवश्य।ही सूक्ष्म शरीरी वायुकायरूप होने से अदृश्य हैं परन्तु पूर्ण शुद्ध—पूर्ण श्रद्धा भक्तियुक्त, पूर्णधर्मात्मा—सत्यवादी आस्तिक मनुष्यको ये पितर सा-

क्षात् भी दीख पड़ते हैं और दर्शन * देते हैं। इस लिये उक्त श्रुति में "इव" शब्द कहा है। यही वायुकाय सूक्ष्म देहधारी पितृदेव श्राद्धकर्ममें आवाहन मन्त्रों से [तत् पितृलोकाज्जीवलोकं अभ्यायन्ति]

शतपथ ब्रा० ७ कां १३ म० ४ कं० ६ ॥

* एकवार श्रीमर्यादापुरुषोत्तम (परमात्मा के पूर्णावतार) श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने वन में पिता श्री दशरथ जीका एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया—यह कथा बड़ी मनोहर है—श्राद्धसमय में श्राद्धभोक्ता मुनियों के देह में श्रीजानकी जी (सीताजी) ने अपने श्वशुर दशरथजीके दर्शन किये।

श्री वाल्मीकीयरामायणे—

मघासुचलितेसूर्य्ये कालेकुतुपकेतथा ।
आयाताऋषयस्सर्वे ये रामेण निमन्त्रिताः ॥ १ ॥
तानागतान्मुनीन्दृष्ट्वा वैदेहीजनकात्मजा ।
अपासर्पत्ततोदूरे विप्राणां मध्यत.स्थिता ॥ २ ॥
अन्यत्र च गतासाध्वी मन्येचाहंत्रपान्वितर ।
किन्तावद्भोजयेविप्रान् सीतामन्वेषयामिकिम् ॥ ३ ॥
गतेषुद्विजमुख्येषु प्रियांरामो ब्रवीदिदम् ।
किमर्थंसुभ्रु नष्टासि मुनीन्दृष्ट्वा समागतान् ॥ ४ ॥
एवमुक्तातदाभर्त्रा त्रपयाधोमुखीतथा ।
मुञ्चन्तीचाश्रुसङ्घात राघव वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥
पितातवमयादृष्टो ब्राह्मणाङ्गेषु राघव ।।
दृष्ट्वात्रपान्विताचाहमपक्रान्तातवान्तिकात् ॥ ६ ॥
याहराज्ञापुराहष्टा सर्वालङ्कारभूषिता ।
सा स्वेदमलदिग्धाङ्गी कथ पश्यामि भूमिपम् ॥ ७ ॥
स्वहस्तेन कथ राज्ञे वानेय भोजन त्विदम् ।
दासानामपियद्दासा नोपभुञ्जन्ति कर्हिचित् ॥ ८ ॥

पितृलोक से जीवलोक अर्थात् मनुष्यलोक में आते हैं। इसलिये वेदमें आज्ञा है कि—

भावार्थ—कुतुपकाल (अपराह्न) में जब श्रीरामचन्द्र जी श्राद्ध करने लगे तो जिन २ ऋषियों को निमन्त्रण दे आये थे वह सब मुनिमण्डली आगयी, उन्हें आता हुआ देखकर जानकी जी उठकर भागगई और दूर जाकर लता पताओं में अपने को छिपालिया। तब श्रीरघुनाथ जी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि आज जानकी जीने मुनियों से क्यों परदा किया। अब मुझे क्या कर्त्तव्य है, जानकीको ढूंढूं या मुनियोंको भोजन कराऊं। अन्त में यही स्थिर किया कि श्राद्धकाल का लोप न होवे। पिण्डदान करके ब्रह्मभोज पूर्ण किया—आशीर्वाद देती हुई सब ऋषिमण्डली चलीगई। उन सब के विदा होते ही जानकी जी आगयीं, तब श्रीरामचन्द्र जी कहने लगे कि हे प्रिये! तुम कहां गई थीं तुमने ऋषियोंका बड़ा अनादर किया और न उनको प्रणाम किया इतना सुनकर लज्जायमान जानकी नीचेको मुखकर रोती हुई बोली कि हे नाथ! ब्राह्मणोंके अङ्गमेंमहाराज श्री दशरथजीको देखकर मै लज्जावश हो लताओमें जा छिपी क्योंकि जिन श्वसुर जी ने सर्व अलंकारों से भूषित मुझे देखा था आज उन के सामने जटा और वल्कल धारण करे कैसे इस वेष को दिखाऊंगी इसी से उस समय छिप जाना ही उत्तम था। दूसरा—यह (वानेय) वनका भोजन अपने हाथ से कैसे परोसूंगी—जिन महाराजको पूर्व षट्रस परोसती थी

इस कथासे सिद्ध होता है कि श्राद्धभोक्ता ब्राह्मणोंके साथ पितर सूक्ष्मरूप में आते हैं और श्रीसती जानकी जी जैसी पूर्ण पतिव्रतायें या पूर्ण धर्मात्मा मनुष्य ही उन पितरोंके दर्शन पा सकते हैं॥

उभे दिशावन्तरे विदधाति प्राचीं च दक्षिणां चैतस्यांथ्ं ह दिशि पितृलोकस्य द्वारं द्वारैवैनं पितृलोकं प्रपादयति ॥ शतपथ० ब्रा० १३। ४। ४।४।५॥

। ग्राम, नगरादि से पूर्व और, दक्षिण दिशा के बीच आग्नेयकोण में चतुष्कोण वेदी (श्मशान मन्दिर) बनावे, क्योंकि इसी आग्नेय दिशामें पितृलोक का द्वार है। ऐसा श्मशान बनाने वाले अपने मृतक को द्वार के मार्ग से पितृलोक को पहुंचाते हैं॥

इत्यादि से स्पष्ट विदित हुआ कि पितृलोक एक स्वतन्त्र लोक है और वह दक्षिण में है—उनका द्वार आग्नेयकोण में से है। वहां अत्यन्त पुण्यवान् जीव जा सकते हैं तथा उन के निवासी पितृदेवोंका शरीर वायुकाय रूप सूक्ष्म है। पूर्णधर्मात्मा—श्रद्धायुक्त सत्यवादी मनुष्योंको ही उन पितृदेवोंका दर्शन होता है। और वे ही वेदके आवाहन मन्त्रों से निमन्त्रित ब्राह्मणों के शरीर में अदृश्य रूप से यहां श्राद्धकर्ममें आते हैं। परन्तु दिव्य चक्षु वाले ही उनका दर्शन कर सकते हैं। इति॥

हे महाशय जी! अब आप यह भी सुनो कि उन पितृदेवों का राजा (स्वामी—अधिष्ठाता) कौन है ? ॥ यथा—

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये० । यजुर्वेद वाजसनेय अ० १९ मं० ४५॥

पितृलोक का राजा यमराज है। अर्थात् जो जाति तथा रूपादि करके तुल्य एकसे अन्तःकरणों वाले पितर यम देवता के राज्यमें रहते हैं। तथा—

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम्। वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत॥

अथर्व० का० १८। अनु० ३ मं० १३॥

अर्थ—सृष्टि के आरम्भ में जो मनुष्यों के बीच सबसे पहिले मरता है, और मरणानन्तर जो इस पितृलोक में पहिले जाता है पीछे अन्य मनुष्य मर २ के जिस के अधिकार में जाया करते हैं इस कारण वह जनों का "संगमन" कहाता है [सम्यग्गच्छन्ति जना यस्मिन् यत्सन्निधौ स सङ्गमनस्तम्] उस विवस्वान् के पुत्र "यमराज" का हे मनुष्यो ! हविर्यज्ञ द्वारा पूजन करो। जैसे पितर सनातन हैं अर्थात् मनुष्योंके समान थोड़े २ कालमें उन का जन्म मरण नही होता वैसे पितरों का वा मरकर पुण्यकर्मों से पितृलोक में जाने वालों का राजा यम भी पितृलोकमें जाने पश्चात् अस्मदादि की अपेक्षा सनातन कहाते हैं। कभी जिन का नाश न हो ऐसे तो वायु आदि सूक्ष्म तत्व भी नहीं हैं क्योंकि प्रलय के

समय में भी नहीं रहते इस से सापेक्ष नित्य वा सनातन सूक्ष्मतत्वों के तुल्य पितर भी हैं। जैसे मनुष्य का शरीर पृथिवी तत्वप्रधान है और स्थूल है वैसे पितृलोक के राजा यम का और पितरों का शरीर वायुतत्वप्रधान सूक्ष्म है। जैसे मनुष्यदेहोंका अधिष्ठाता एक २ जीवात्मा होता है वैसे पितृदेहोंके साथ भी एक २ अधिष्ठाता जीव है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि पितृलोक का राजा यमराज है। उक्तञ्च—

अपेमंजीवा अरुधन् गृहेभ्य-स्तं निर्वहत परिग्रामादितः। मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार ॥

अथर्व० कां० १८। २। २७॥

अ०—हे जीवाजीवित जना इमं मृतं देहं गृहेभ्यः पृथगपारुधन् निस्सारयत तमितो ग्रामात्परि-बहिर्निर्वहत नयत। प्रचेताः प्रकृष्टबुद्धिर्मृत्युर्यमस्य दूत आसीदस्ति समृतस्यासून् पितृभ्यः पितृमार्गाय गमयाञ्चकार गमयति वर्त्तमाने लड्लिटौ॥

भावार्थः०—हे जीवित पुरुषो! इस मरेहुए मुर्दा शरीर को घरोंसे बाहर निकालो और उस को इस

ग्राम से बाहर ले जाओ। यमराज का दूत बड़ा बुद्धिमान् मृत्यु नामक है जो मरे हुओं के प्राणों को पितर बनने के लिये यमलोक अर्थात् पितृलोक में पहुंचाता है। तथा—

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्। तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयंति ॥

अथर्व० कां० १८। अनु० ३। मं० ५९॥

अर्थ—जो हमारे पिता के पितर पितामहादि (दादे वगैरह) तथा प्रपितामहादि कि जो मरणानन्तर महान् अन्तरिक्ष लोकमें प्रवेश करचुके हैं उन हमारे पितरों के लिये, प्राणों का ले जाने वाला स्वतन्त्र राजा यम कर्मानुसार उत्तम शरीर देवे। इत्यादि वेदमन्त्रों से निःसन्देह सिद्ध हुआ कि पितृलोक का राजा श्रीयमराज है और वही मनुष्यादि प्राणीमात्र को (मरणानन्तर उत्तम—निकृष्ट कर्मानुसार) यथायोग्य शरीर देकर सुख दुःखादि भुगाता है। इति॥

हे महाशय जी ? अब आप के उस संशय का भी समाधान किया जाता है जो कि पितृलोकनिवासी पितरों के पूजन सत्कार (श्राद्ध—तर्पण) क-

रने की क्या आवश्यकता है और न करने से क्या हानि वा दोष है।

समाधान–प्रजापतिं वै भूतान्युपासीदन् प्रजा॰ वै भूतानि विनोधेहि यथा जीवामेति। ततो देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदं-स्तानब्रवीद् यज्ञो वोऽन्नममृतत्वं व ऊर्क् सूर्य्यो वो ज्योतिरिति ॥१॥ अथैनं पितरः प्राचीनावी-तिनः सव्यं जान्वाच्योपासीदंस्तानब्रवीद् मा॰ सि मासि वोऽशनं स्वधा वो मनोजवश्चन्द्रमा वो ज्योतिरिति ॥२॥ अथैनं मनुष्याः प्रावृता उ॰ पस्थं कृत्वोपासीदंस्तानब्रवीत् सायं प्रातर्वोऽ॰ शनं प्रजावो मृत्युरग्निर्वो ज्योतिरिति ॥३॥

यजु॰ शत॰ का॰ २ प्र॰ ३ ब्रा॰ ४॥

भाषा भावार्थः–सृष्टि के आरम्भ में देवता तथा पितर और मनुष्य ये तीन प्रकार के भूत (जिस प्रकार से हमारा जीवन–सत्कार–पूजन हो सो प्र-कार हमारा विधान करें) इस कथन के अभिप्राय से प्रजापति (ब्रह्मा) के समीप गये, वहां प्रथम दे-वताओं ने यज्ञोपवीत को धारण कर दक्षिणजानु का भूमि पर पात कर ब्रह्माजीके सन्मुख उपस्थित होकर जीविका एवं सन्मान होने की याचना की तब प्रजापतिने यह कहा कि यज्ञ आप का अन्न है अमृत आपका ऊर्क् (वीर्यप्रद) है और सूर्य आप के लिये प्रकाश है ॥ १ ॥

फिर पश्चात्–प्राचीनावीति (अपसव्य यानी यज्ञोपवीत बायें तरफ करते) हुए बांया (जानु) घोंटू पृथ्वी पर नवाय कर पितर लोग उपस्थित हुए, तब उन पितरों के प्रति प्रजापतिने यह कहा कि महीने २ भरमें १ * एकवार अमावास्याके दिन आप का भोजन होगा। तुम्हारे लिये कर्मकाण्डमें "स्वधा" शब्द बोला जायगा। वह स्वधा पदवाच्य वस्तु तुम्हारे लिये मनके तुल्य वेग वाला होगा। और चन्द्रमा तुम्हारा ज्योति अर्थात् तुमको प्रकाश पहुंचाने वाला होगा ॥ २ ॥

फिर प्रावृत "निवीतं कण्ठलम्बितम्" (अ-

* यह भी ध्यान में रहे कि मनुष्यके एक महीनेका समय पितरों का एक दिन–रात सब शास्त्रोंमें माना गया है। इस लिये कृष्णपक्षरूप रात्रि की समाप्ति में प्रातः काल अमावास्या को पितरोंको अपने दिन के हिसाब से नित्य भोजन मिला और मानुष दिन के हिसाब से महीने २ में भोजन मिलना कहा गया है तथा उक्त कथन से यह भी आया कि अपसव्य रहने वाले एव बांया घोंटू टेक के बैठने वाले और महीने २ में अमावास्या को एकवार भोजन करने वाले तथा चन्द्रमा जिन का ज्योति है वे पितर हैं। वा जिनका नाम पितर है वे उक्त प्रकार से अपसव्यादि रहने वाले हैं। मनुष्य प्रति दिन भोजन करते हैं और पितर महीने २ में एकवार अमावास्या को भोजन करते हैं इस कारण पितर मनुष्य नहीं अर्थात् मनुष्यों से पृथक् हैं। इस से भी स्थूल देह धारी जीवित पितरो का स्पष्ट खण्डन है ॥

र्थात् गलेमें मालाकी तरह यज्ञोपवीत पहिने) हुए दोनों (जानुओं) घोंटुओंको भूमि पर नवाय कर मनुष्य उपस्थित हुए, तब उन से प्रजापति ने यह कहा कि सायं और प्रातःकाल आपका भोजन होगा और पुत्र-पौत्रादि प्रजा आप लोगों का मृत्यु है और अग्नि आपकी ज्योति यानी प्रकाश है ॥ ३॥

इत्यादि वेद की श्रुतियों में स्पष्ट आज्ञा दिखायी वा कही गयी है कि हर एक वैदिकधर्मावलम्बी मनुष्यमात्रका यह अवश्य कर्त्तव्य है कि ब्रह्मा जी द्वारा नियत किये यज्ञों से देवताओं का, तथा प्रत्येक महीनेकी अमावास्या में पितृयज्ञ (श्राद्ध) द्वारा पितरों का पूजन-सत्कार करें जिससे कि वे देवता और पितर अपने अभीष्ट (यानी मुकर्रिर) पूजन सत्कारको ग्रहण करके सन्तुष्ट होकर ब्रह्माज्ञाकारी मनुष्योंके प्रति सन्तान-धन-धान्य समृद्धि आदि सुख देकर तथा उन्हों के मृतपितरों की भी सद्गति करें वा करते रहें । और जो मनुष्य वेद तथा श्री ब्रह्माजीकी आज्ञा उल्लघन करके वेदोक्त देव-पितृ यज्ञादि कर्म नहीं करता वह ब्रह्माज्ञा विरोधी होकर वेदमार्ग से भ्रष्ट होकर अनादर और दुःखको प्राप्त होता है और उन देव पितरोंके कोपद्वारा वह मनुष्य अनर्थ और दोषका भागी होता है । तथा और भी स्पष्टरूप से वेद में दिखलाया गया है कि—

एष * पन्था एतत्कर्मैतद् ब्रह्म तत् सत्यं तस्मान्न प्रमाद्येत् तस्मान्न प्रमाद्येत्तन्नातीयाद् न ह्यत्यायन् पूर्वे येऽत्यायंस्ते पराबभूवुः तदुक्त मृषिणा—"प्रजा ह तिस्रोऽत्यायमीयुर्न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे, बृहद् ह तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आविवेश" इति, "प्रजा ह तिस्रोऽत्यायमीयुरिति" या वै ता इमाः प्रजास्तिस्रोऽत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि वङ्गावगधाश्चेरपादाः, 'न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे, इति, ता इमाः प्रजा अर्कमभितो निवि-

---

* एतच्छब्दः सन्निहितार्थपरामर्शकः, सन्निहितश्चार्थो ऽतीत आगामीचेत्येवं द्विविधः, तथा च (एष) उभयविधोऽप्यर्थः (पन्थाः) पुरुषार्थस्य मार्गः, साधनमितियावत्, तदुभयं विस्पष्टं निर्दिश्यते (एतत्कर्म एतद्ब्रह्म) अग्निमीळ इत्यारभ्य, अह्नोरूपम् इत्यन्तेनातीत सन्निहितग्रन्थेन प्रतिपादितं यत्कर्म तथा उक्तम्-इत्यारभ्य आचार्य इत्यन्तेन सन्निहितेनारण्यक द्वय रूपेणोत्तर ग्रन्थेन निरूपितं यत्सगुणं निर्गुणं च ब्रह्म एतदुभयमपि पुरुषार्थ साधनं, व्यवहार परमार्थ भेदेनोभयमपिसत्यम्, अत्रकर्मशब्देन तज्ज्ञानपूर्वकमनुष्ठानं ब्रह्मशब्देन च तद्विषयं ज्ञानमात्रं गृह्यते, यथोक्तस्योभयविधस्य मार्गत्व द्रढयितुमयोगव्यावृत्तिमन्ययोगव्यावृत्तिं च विधत्ते (तस्मान्न प्रमाद्येत) कर्मानुष्ठानब्रह्मज्ञानयोरसंपादनं प्रमादः, तथा संपादयितुं प्रवृत्तेनाऽप्यालस्यादिना तत्परित्यागोऽपि प्रमादः, ए तदुभयं न कुर्याद् इति-।

ष्टा इममेवाग्निं, वृहद्‌ ह तस्थौ भुवनेष्वन्तः इति, अद उ एव वृहद्‌ भुवनेष्वन्तरसावादित्यः इति, वायुरेव पव-पवमानो हरित आविवेश, इति, वायुरेव पवमानो दिशो हरित आविष्टः" ॥

ऋग्वेद-ऐतरेयारण्यक २ अ० १ खं० १ ॥

भावार्थः—(एतत्कर्म—एतद्ब्रह्म) यह जो पूर्वोत्तर ग्रन्थसे देव—पितृयज्ञादि कर्म और ब्रह्मका निरूपण किया है (एष पन्थाः) यही पुरुषार्थका मार्ग है अर्थात् भोग मोक्षका देनेवाला है (एतत् सत्यम्) यही वेदोक्त कर्म तथा ब्रह्मज्ञान अवश्य फल देनेसे सत्य है। और अन्य जो अवैदिक अनुष्ठान हैं वह अनर्थ पर्यवसायी होनेसे मिथ्या हैं (तस्मान्न प्रमाद्येत्) तिस अम्नायमार्गसे प्रमाद न करे और (तन्नातीयाद्) तिस मार्ग का अतिक्रमण भी न करे किन्तु आलस्य तथा अन्य कुमार्गोंको त्यागकर इसी का ही अनुसरण करे; इसीसे ही (नह्यत्यायन् पूर्वे) जो पूर्व मनु—वसिष्ठ आदि महापुरुष हुए हैं वह इस मार्गका अतिक्रमण यानी उल्लंघन नहीं करते रहे और (येऽत्यायन्) जो नास्तिक लोग इस वेदोक्त मार्गका उल्लंघन करते रहे (ते परा बभूवुः) वह पुरुषार्थसे भ्रष्ट हुए निरादरको प्राप्त हुए हैं ॥

इस ब्राह्मणोक्त अर्थकी दृढ़ताके लिये मन्त्रका प्रमाण देते हैं कि(तदुक्तमृषिणा) इति, अब इस मन्त्र का स्वयं ही ब्राह्मण व्याख्यान करता है कि प्रजा (प्रजा ह तिस्रोऽत्यायमीयुः इति, यावै ता

इमाः प्रजास्तिस्रोऽत्यायमायन् तानीमानि वयांसि वङ्गा अवगधाश्चेरपादाः) अर्थात् ब्राह्मणादि भेदसे जो अनेक प्रकारकी प्रजा हैं उनमेंसे तीन भाग जो प्रजा हैं वह वैदिक कर्मके उल्लंघन करने वाली हैं और एकभाग प्रजा वैदिककर्ममें निष्ठावाली है। वहां जिन प्रजाओंने वैदिककर्म का त्याग किया है उन प्रजाओंकी गति कहते हैं-(तानीमानि वयांसि) अर्थात् जिन्होंने श्रौत यानी देव-पितृ यज्ञादि कर्म का त्याग किया है उनमेंसे एकभाग तो काक आदि पक्षि योनियोंको प्राप्त होते हैं जो कि आकाश में विचरने वाले हैं और एक भाग वङ्ग * (वृक्ष) और अवगध (ओषधियें वा वनस्पतियें) हैं और एक भाग ईरपाद हैं अर्थात् पृथिवी के बिलमें निवास करने वाले पादोदर (सर्प) आदि हैं, अर्थात् जिन २ लोगोंने पूर्वोक्त श्रौतमार्गका त्याग किया है वह मर कर नरक भोग के अनन्तर पशुपक्षादि-कीट स्थावर आदि अनेक तिर्य्यग् योनियों को प्राप्त होते हैं।

इस-प्रकार वैदिकमार्गके उल्लंघन करने वाली तीन प्रकारकी प्रजाकी व्यवस्था कहकर अब एकभाग वाली जो आस्तिक प्रजा है उस की गति कहते हैं कि "न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे" इति।

* (वङ्गाः) वनगता वृक्षाः, अवगधाः-अवन्ति-रक्षन्ति मनुष्यादीन् इति अवा', गध्यन्ते-अभिकाङ्क्ष्यन्ते जनैरिति गधा वनस्पतिरूपा व्रीहि-यवादि रूपा ओषधय, इत्यर्थः॥

इसीका विवरण करते हैं (ता इमाः प्रजा अर्कमभितो निविष्टा इममेवाग्निम्) इति, अर्थात् आस्तिक प्रजामेसे कोई एक तो आहवनीय रूप (अर्क) अर्चनीय जो अग्नि है उसकी उपासना करते हैं और कोई एक (वृहद् ह तस्थौ भुवनेष्वन्तः) इसीका विवरण कहते हैं कि (अद उ एव वृहद् भुवनेष्वन्त रसावादित्यः) इति, अर्थात् यह जो ब्रह्माण्डमें व्यापक तेजोमय मार्त्तण्ड-(सूर्य) है उसकी उपासना करते हैं। और कोई एक [पवमानो हरित आविवेश] इसका विवरण कहते हैं कि (वायुरेव पवमानो दिशो हरित आविष्ट) इति, अर्थात् निखिल दिशा में संचारी जो पवित्र रूप वहन शील वायु हैं तिसकी उपासना करते हैं, अर्थात् समष्टि वायु रूप हिरण्य गर्भ की उपासना करते हैं ॥

तात्पर्य यह है कि आस्तिक लोग अग्नि आदि की उपासना द्वारा सद्गति को प्राप्त होते हैं और नास्तिक लोग पक्षि आदि रूप अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥

तथा मनु भगवान् एवं योगी श्री याज्ञवल्क्य मुनि ने भी—

अकुर्वन्विहितंकर्म निन्दितंचसमाचरन् ।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयतेनरः ॥
मनु० अध्या० ११ । ४४ ॥

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्यचसेवनात्

अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरःपतनमृच्छति ॥

याज्ञ० अ० ३ । २१९ ॥

अर्थात्–विहित (यानी वेदोक्त देव–पितृयज्ञादि) कर्मके न करने से और निषिद्ध कर्मोंके करने से तथा विषयोंमें अति आसक्त होनेसे पुरुष प्रायश्चित्त का भागी होता है। एवं याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि–विहित कर्म के न अनुष्ठानसे और निन्दित (परस्त्रीगमनादि) के सेवनसे तथा इन्द्रियोंको न रोकनेसे पुरुष पापको प्राप्त होता है ॥

इत्यादि वेद–स्मृतिशास्त्रोंके प्रमाणोंसे निस्सन्देह सिद्ध होता है कि मनुष्यमात्र, वेदादिशास्त्रोक्त श्रौत–स्मार्त्त कर्मों के सेवन न करने से पतित होकर अधोगतिको प्राप्त होता है । इसलिये हरएक वेद-मतानुयायी आस्तिक जनका यह अतीव मुख्य और अवश्य करने योग्य कर्तव्य है कि वह निरालस्य होकर विना थक ठीक २ शास्त्रदर्शित विधिसे देश-काल पात्रका विचार करके श्राद्धादि (देवपितृयज्ञ) करके अपना जीवन सफल करे। और उपरोक्त कर्मकाण्ड का त्याग करने से निःसन्देह दोष एवं अत्यन्त हानि होती है ॥ इत्यलम् विद्वत्सु—

इति श्री श्राद्धपितृमीमांसायां पितृलोकस्थितिस्तस्याऽधिष्ठातृपितृदेवानां स्वरूपवर्णने चैवं तत्कर्माऽनुष्ठानस्याऽत्यावश्यकता प्रदर्शने समाप्तोऽयं पञ्चमोऽध्यायः

ॐ—सच्चिदानन्देश्वराय नमः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

समाजी—श्रीपण्डित जी महाराज ! अब कृपा करके यह भी तो सुनाओ कि श्राद्धमे केवल ब्राह्मणोंको ही निमन्त्रण देकर भोजन करानेकी क्या आवश्यकता है ? क्यों नहीं उन हमारे मित्र (दोस्त) वा अन्य किसी गरीब अनाथ अथवा अब नवीन आर्य्य हुए [मुसल्मीन, अब्दुलगफूर वगैरह जिन्हों का आर्य नाम धर्मपालादि रक्खे गये हैं उन] महाशयोंको अपने पितरोंके निमित्त श्राद्धमें भोजन करावें ? क्या केवल ब्राह्मणोंकोही इसके लिये किसी महाराजासे इकरारनामा लिखा मिला है वा कोई इनको किसीने सार्टीफिकेट लिखदिया है ?

सनातनी—महाशय जी ! घबराओ मत, थोड़ा धैर्य धारण करो और ध्यान लगाकर सुनो कि ब्राह्मणों के लिये श्रीमहाराजाधिराज महर्षि श्रीमनु भगवान् ने क्याही सुन्दर सार्टीफिकेट रूप में पक्का इकरारनामा लिखदिया है कि जो सब वेदमतानुयायी आस्तिक हिन्दुओंको परम माननीय है ॥

यथा—मनुस्मृ० अध्याय १ श्लोक ८२ से १०१ तक

ऊर्ध्वंनाभेर्मध्यतरः पुरुषपरिकीर्तितः ।
तस्मान्मेध्यतमं त्वस्यमुखमुक्तंस्वयंभुवा ॥९२॥

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद् ब्राह्मणश्चैवधारणात्।
सर्वस्यैवास्यसर्गस्य धर्मतोब्राह्मणःप्रभुः ॥९३॥
तंहिस्वयंभूःस्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत् ।
हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्यचगुप्तये ॥९४॥
यस्यास्येनसदाश्नन्ति हव्यानित्रिदिवौकसः ।
कव्यानिचैवपितरः किंभूतमधिकंततः ॥ ९५ ॥
भूतानांप्राणिनःश्रेष्ठाः प्राणिनांबुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सुनराःश्रेष्ठा नरेषुब्राह्मणाःस्मृताः ॥९६॥
ब्राह्मणेषुचविद्वांसो विद्वत्सुकृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषुकर्त्तारः कर्तृषुब्रह्मवेदिनः ॥ ९७ ॥
उत्पत्तिरेवविप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मस्यशाश्वती ।
सहिधर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ९८ ॥
ब्राह्मणोजायमानोहि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरःसर्वभूतानां धर्मकोशस्यगुप्तये ॥ ९९ ॥
सर्वस्वंब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ।
श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्ववैब्राह्मणोऽर्हति ॥१००॥
स्वमेवब्राह्मणोभुङ्क्ते स्वंवस्तेस्वंददातिच ।
आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जतेहीतरेजनाः ॥१०१॥

अर्थात्–श्री ब्रह्माजीने पुरुषोंको नाभिसे ऊपर के भागमें अधिक पवित्र कहा है। और इसके मुख को तो उससे भी पवित्र कहा है ॥ ९२ ॥ ब्राह्मण सब अंगों में उत्तम परमात्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है, क्षत्रियादि तीनोंसे पहिले जन्मा है और वेदको मु-

खाग्र रखता है—इस कारण ब्राह्मण धर्म का उपदेश करनेमें इस सब सृष्टिका गुरु (शासक) है ॥ ९३ ॥ स्वयम्भू ब्रह्माने तप करके देवताओंको 'हव्य, और पितरोंको 'कव्य, पहुंचानेके लिये तथा इस सब जगत्‌की [यज्ञादिके द्वारा वर्षा आदिसे] रक्षा करनेके लिये आरम्भमें अपने मुखसे ब्राह्मणोंको रचा है ॥ ९४ ॥ जिसके मुखसे देवता हव्योंको और पितर कव्योंको सदा खाते हैं, तिससे बढ़कर कौनसा प्राणी हो सकता है ? ॥ ९५ ॥ पृथिव्यादि पञ्चभूतोंसे बनाये स्थावर जंगम सब प्राणियोंमें कीट पतंगादि प्राणी श्रेष्ठ हैं कदाचित् किञ्चित् सुखलेश के प्राप्त होने से और उनसे (बुद्धिजीवी) सार्थ निरर्थक स्थानमें जाने न जाने वाले पशु आदि श्रेष्ठ हैं—उनसे प्रकृष्ट ज्ञान के सम्बन्धसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं—उनसे भी सर्वपूज्य और मोक्षाधिकारके योग्य होनेसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ॥ ९६ ॥ ब्राह्मणोंमें भी स्वर्गादि फल देनेवाले ज्योतिष्टोमादि कर्मकाण्डके विद्वान् अधिकारी श्रेष्ठ हैं—उनसे अनागत के लिये प्रथम सत्कर्म करने वाले श्रेष्ठ हैं—उनसे भी हिताहित प्राप्ति परिहार भागी होनेसे (कर्त्ता) अनुष्ठाता श्रेष्ठ हैं—उन से भी मोक्षफलके लाभयोग्य होनेसे ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते हैं ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणका देह जन्म मात्रसे ही अविनाशी धर्मकी मूर्त्ति है जिस से यह धर्मके लिये उत्पन्न हुआ है । धर्मानुगृहीत आत्मज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति के लिये योग्य है ॥ ९८ ॥

जिससे ब्राह्मण उत्पन्न होता हुआही पृथिवीमें (अधि) ऊंचा और श्रेष्ठ है। सर्व धर्मोको ब्राह्मणद्वारा उपदेश किये जानेसे तथा सब जीवोंके धर्मके समूह की रक्षाके लिये समर्थ है ॥ ९९ ॥ जो कुछ पृथिवी में धनादि पदार्थ हैं वह सब ब्राह्मणका अपना स्वत्व है यह बात ब्राह्मणकी स्तुतिके लिये कही है—तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण के अपने स्वत्व के तुल्य है इस से ब्राह्मण ब्रह्माजीके मुख से उत्पन्न होने, और वंश से श्रेष्ठ होनेसे सर्व पदार्थो और द्रव्योंके ग्रहणके योग्य है ॥ १०० ॥ ब्राह्मण जो दूसरेका भी अन्न भक्षण करता है सो अपना ही करता है, दूसरे का जो वस्त्र पहरता है और जो दूसरेका पदार्थ लेकर औरके अर्थ देता है वह भी ब्राह्मणका अपना ही पदार्थ है ऐसा होनेसे ब्राह्मणकी कृपा ही से और सब लोग भोजनादि करते भोगते हैं ॥ १०१ ॥

इत्यादि श्री महाराजाऽधिराज महर्षि श्रीमनु भगवानूने ब्राह्मणोंकी प्रशंसा करते हुए देवता और पितरोंको यज्ञ में "हव्य" अन्न और श्राद्ध "कव्य" अन्न पहुंचाने के लिये तथा वेद प्रतिपादित धर्म का सत्योपदेश करने के लिये इस पृथ्वी पर ब्राह्मणों को ही मुख्य भूदेव ठहराकर सार्टीफिकेटरूप इकरारनामा लिखदिया है इसी कारण यज्ञ और श्राद्धादिमें ब्राह्मणोंके प्रति आदर सत्कार पूर्वक निमन्त्रण देकर भोजनादि दान देने की अत्यन्त आवश्यकता

है । इसलिये प्रथम भूदेव ब्राह्मणोंका पूजन सत्कार करके पीछे यथाशक्ति अनुसार भले ही अपने मित्र वा अन्य किसी अनाथादिका भोजनसे सत्कार करना चाहे तो करे यही वेदादि धर्मशास्त्रोंका मुख्य सिद्धान्त है ॥

समाजी—श्रीपण्डित जी महाराज ! यह तो ठीक सार्टीफिकेट रूप अच्छा माननीय इकरारनामा सुनाया परन्तु इसमें मुझे औरभी बड़ा सन्देह हुआ है कि श्राद्धादि शुभकर्मों में सुपात्र, विद्वान् तथा योग्य ब्राह्मणको ठीक २ देखकर निमन्त्रण देना चाहिये कि नहीं; चाहे वो कैसा भी हो ! अर्थात् मद्य मांसाहारी—व्यभिचारी—निन्दित आचरण वाले मूर्ख को भी केवल उस के नाम मात्र ब्राह्मण होने से दिया जाय ? ॥

सनातनी—महाशय जी ! यह आपका सन्देह बहुत सत्य अच्छे साररूप निर्णय कराने वाला है । परन्तु आप निष्पक्षपाती हो कर समयको विचार करके श्राद्धमें अधिकारी और अनधिकारी ब्राह्मणों को सुनो । यथा मनु० अध्याय ३ में—

श्रोत्रियायैवदेयानि हव्यकव्यानिदातृभिः ।
अर्हत्तमायविप्राय तस्मैदत्तं महाफलम् ॥१२८॥
एकैकमपिविद्वांसं दैवेपित्र्ये च भोजयेत् ।
पुष्कलंफलमाप्नोति नामन्त्रज्ञान्बहूनपि ॥१२९॥

दूरादेवपरिक्षेत ब्राह्मणंवेदपारगम् ।
तीर्थंतत्हव्यकव्यानां प्रदानेसोऽतिथिःस्मृतः ॥१३०॥
सहस्रंहिसहस्राणामनृचां यत्रभुञ्जते ।
एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हतिधर्मतः ॥१३१॥
ज्ञानोत्कृष्टायदेयानि कव्यानिचहर्वींषिच ।
नहिहस्तावसृग्दिग्धो रुधिरेणैव शुद्धयतः ॥१३२॥
यावतोग्रसतेग्रासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतोग्रसतेप्रेत्य दीप्तशूलष्टर्चयोगुणान् ॥१३३॥
नश्राद्धेभोजयेन्मित्रं धनैःकार्योऽस्यसंग्रहः ।
नारिंनमित्रंयंविद्यात्तंश्राद्धेभोजयेद्द्विजम् ॥१३८॥
सम्भोजनीसाभिहिता पैशाचीदक्षिणाद्विजैः ।
इहैवास्तेतुसालोके गौरन्धेवैकवेश्मनि ॥१४१॥
यथेरिणेबीजमुप्त्वा न वप्तालभतेफलम् ॥
तथाऽनृचेहविर्दत्वा नदातालभतेफलम् ॥१४२॥
दातृन्प्रतिग्रहीतृंश्च कुरुतेफलभागिनः ।
विदुषेदक्षिणांदत्वा विधिवत्प्रेत्यचेहच ॥१४३॥
यत्नेनभोजयेच्छ्राद्धे बहृचंवेदपारगम् ।
शाखान्तगमथाध्वर्युं छान्दोगन्तुसमाप्तिकम्॥१४५॥
एपामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः ।
पितृणांतस्यतृप्तिःस्याच्छाश्वतीसाप्तपौरुषी ॥१४६॥
नब्राह्मणंपरिक्षेत दैवेकर्मणि धर्मवित् ।
पित्र्येकर्मणितुप्राप्ते परिक्षेतप्रयत्नतः ॥१४९ ॥

येस्तेनपतितक्लीवा येचनास्तिकवृत्तयः ।
तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥१५०॥
जटिलंचाऽनधीयानं दुर्बलंकितवंतथा ।
याजयन्तिचयेपूगां-स्तांश्चश्राद्धेनभोजयेत् ॥१५१॥
चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा ।
विपणेनचजीवन्तोवर्ज्याःस्युर्हव्यकव्ययोः ॥१५२।
ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाऽग्निरिवशाम्यति ।
तस्मैहव्यंनदातव्यं नहिभस्मनिहूयते ॥१६८॥

इत्यादि संक्षेपतया ॥

दाताओंको चाहिये कि वेदपाठी सदाचरण ब्राह्मणको ही देव-पितृकर्ममें अन्न आदि दें, क्योंकि- ऐसेको दिया हुआ दान महाफल देता है ॥१२८॥ देव कर्म (यज्ञ) और पितृकर्म (श्राद्धमें) में एक २ विद्वान् ब्राह्मण को भी जिमादेय तो बहुत फल पाता है और वेदमन्त्र न जानने वाले बहुतसे ब्राह्मणोंको भी भोजन करानेसे वह फल नहीं होता ॥१२९ वेद में पारंगत ब्राह्मणकी दूरसे ही (अर्थात् पिता-पितामह आदि भी कैसे श्रेष्ठ गुणीथे इस प्रकार) परीक्षा करे, क्योंकि-वह ब्राह्मण हव्य कव्य देने का तीर्थरूप होता है और उसको दान देनेमें अतिथि के पूजनके समान फल प्राप्त होता है ॥ १३०॥ जहां वेदको न जानने वाले दशलाख ब्राह्मण भोजन करते हों वहां उन सबके भोजनका फल, भोजन करने

से प्रसन्न हुआ एक ही वेदवेत्ता ब्राह्मण धर्मानुसार दे सकता है ॥१३१॥ पितरोंके निमित्त दियेजाने वाले बलिरूप "कव्य" और देवता और देवताओं को दिये जाते हुए बलिरूप "हव्य" ज्ञानसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको देय, मूर्खों को न देय, क्योंकि—रुधिरसे सने हुए हाथ रुधिरसे ही शुद्ध नही होते ॥१३२॥ वेदमंत्र हीन ब्राह्मण देवकर्म और पितृकर्म में जितने ग्रासों को निगलता है उतने ही धंधकते हुए लोहेके शूल ऋष्टि और गोले यजमानको निगलने पड़ते हैं १३३ ॥ श्राद्ध में मित्र [दोस्त को न जिमावे, मित्रोंका संग्रह धनसे करे, जिसको न अपना मित्र समझता हो न शत्रु समझता हो उस ब्राह्मणको ही श्राद्धमें जिमावे ॥ १३८ ॥

जो पुरुष श्राद्धकर्ममें मित्रमण्डलको इकट्ठा करके भोजन कराता है वह पैशाची दक्षिणा कहाती है और यह दक्षिणा (भोजन दान आदि) [जैसे अन्धी गौ एक घरमें ही रहती है उसमेंसे बाहर नही निकल सकती तैसे] इस लोकमें ही रहती है और उससे परलोकमें पितरों का कुछ उपकार नहीं होता है ॥ १४१ ॥ जैसे ऊषर (कलरवाली) भूमिमें बीज बोकर बोनेवाला फल नहीं पाता है तैसेही वेदमन्त्र न जानने वाले ब्राह्मण को हव्य कव्य देने पर दाता को फल नही मिलता है ॥१४२॥ विद्वान् ब्राह्मण को

विधिवत् भोजन कराकर दक्षिणा देने पर वह देने वाले और लेनेवाले यानी दोनों यजमान पुरोहित को इस लोकमें और परलोकमें फलका भागी करती है ॥१४३॥ श्राद्धमें परमयत्न करके वेद पारंगत ऋग्वेदी ब्राह्मणको, वा सकल शाखाके ज्ञाता यजुर्वेदी ब्राह्मणको अथवा समाप्ति पर्यन्त सामवेद जानने वाले ब्राह्मणको भोजन करावे ॥१४५॥ इनमेंसे कोई भी ब्राह्मण जिसके श्राद्धमें सत्कारके साथ भोजन पाता है उसके सात पीढ़ी पर्यन्तके पितर तृप्त होते हैं ॥१४६ धर्मज्ञ पुरुष देवकर्ममें ब्राह्मणकी परीक्षा न करे परन्तु पितृकर्म (श्राद्ध) में तो यत्न करके परीक्षा करे ॥१४८॥ जो चोर—पतित वा नपुंसक हों, और नास्तिक मतके वा नास्तिकोंकी जीविका खाने वाले हों तो उन ब्राह्मणोंको मनुजीने देवकर्म तथा पितृयज्ञमें अयोग्य अनधिकारी कहा है ॥१५०॥ वेदाध्ययन शून्य ब्रह्मचारी, दुर्बल, ज्वारी, तथा बहुत से यजमानोंको एकसाथ बैठाकर यज्ञ कराने वाले, धन ठहरा कर पूजा करने वाले पुजारी, तथा मांसविक्रेता ऐसे जो निन्दित व्यापार से जीविका करते हों तो उनको देव—पितृकर्ममें न जिमावे ॥१५१॥ १५२॥ वेद न पढ़ने वाला ब्राह्मण तिनकों (तृण—वा—घास) की अग्निके समान निर्जीव हो जाता है, ऐसे ब्राह्मणोंको हव्य और कव्य न देना चाहिये क्योंकि वह राखमें होमा हुआसा वृथा जाता है ॥१६८॥

इत्यादि संक्षेपतासे दिखाये वा कहे गये अधिकारी और अनधिकारी ब्राह्मणों को श्राद्धादि शुभ कर्म्मों में परम यत्नसे ठीक २ देख विचार करके पितरोंके निमित्त भोजन कराना चाहिये । और नीचे बताई गयी विधिसे श्राद्धकर्त्ता और भोक्ता इन दोनों को वैसे ही नियमसे रहना चाहिये। यथा मनु० अध्याय ३ के १८७ से १९० श्लोक तक—

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते ।
निमन्त्रयेतत्र्यवरान् सम्यग्विप्रान्यथोदितान्।१८७
निमन्त्रितोद्विजःपित्र्ये नियतात्माभवेत्सदा ।
नचछन्दांस्यधीयीत यस्यश्राद्धंचतद्भवेत ॥१८८॥
निमन्त्रितान्हिपितर उपतिष्ठन्तितान्द्विजान् ।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते॥१८९॥
केतितस्तुयथान्यायं हव्यकव्येद्विजोत्तमः ।
कथञ्चिदप्यतिक्रामन्पापः सूकरतांव्रजेत् ॥१९०॥

अर्थात्—श्राद्धकर्मके प्राप्त होने पर श्राद्धके दिन से एक दिन पहिले और यदि न होसके तो उसीही दिन जिनके लक्षण कहचुके हैं ऐसे तीन अथवा एक ब्राह्मण को सत्कार पूर्वक निमन्त्रण दे, ॥१८७॥ श्राद्ध में निमन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रणके दिनसे श्राद्धके दिनकी रात्रि तक नियमसे रहे अर्थात् स्त्रीसंग आदि न करे और अवश्य करने योग्य काम्य जप आदि के सिवाय—वेदका अध्ययन न करे और

ऐसे श्राद्ध करने वाला यजमान भी इसीही नियमसे रहे ॥१८८॥ क्योंकि–निमन्त्रित ब्राह्मणोंमें पितर अदृश्य रूपसे स्थित होते हैं और प्राणवायुके समान चलते हुएके साथ चलते हैं और बैठने पर समीप बैठते हैं इसलिये उन ब्राह्मणोंको नियमसे पवित्र रहना चाहिये ॥१८९॥ हव्य कव्यमें शास्त्रके अनुसार निमन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रण को अंगीकार करके यदि किसी कारण * से भोजन न करे तो उस पापसे दूसरे जन्म में वह शूकर होता है। इसलिये श्राद्ध करने वाले को भी जिस ब्राह्मणको निमन्त्रण

* जो ब्राह्मण गरीब यजमानका प्रथम निमन्त्रण पाकर पीछे यदि साहूकार धनाढ्य क्षत्रिय आदि आकर निमन्त्रण दे तो लोभवश होकर प्रथम आये उस बिचारे गरीब को छोड़कर धनाढ्यके पास पहिले जावे और असमर्थ यजमान को छोड़कर समर्थवान् यजमान के पास जाना अर्थात् वह समर्थवान् यजमान अहंकार और धन के मद से कहे कि-ऐ ब्राह्मण ! यदि तुम पहिले मेरे पास श्राद्धभोजनादि खानेको नहीं आते हो तो हम तुमको छोड़कर अन्य किसीको श्राद्ध खिला देंगे और तुमको आगेके लिये देखेंगे अर्थात् पुरोहित करके नहीं मानेंगे ऐसे लोभदायक यजमानके मदरूप वचनों पर लोभित होकर जो न्यायपथका परित्याग करता हुआ प्रथम निमन्त्रण दिये हुए उस गरीब यजमानके पास भोजन करने को जो नहीं जाता–वह लोभी–पक्षपाती और डरपोक वा ठग ब्राह्मण उस लोभ वा काहिलता रूप पाप से दूसरे जन्ममें अवश्य ही शूकर होता है ॥

दिया हो उसीको ही श्रद्धा (नम्रता) से श्राद्धमें ले आकर भोजन कराना चाहिये ॥ इति ॥

समाजी—श्री पण्डितजी महाराज ! आप श्रीवरोंने तो ठीक ही सत्यरूपसे श्राद्धके योग्य और अयोग्य ब्राह्मणोंका वर्णन किया परन्तु आपके कथनानुसार इस वक्त ऐसा वेद पारंगत पूर्ण पवित्र विद्वान् अब मिलना महाकठिन है । और ऐसे शास्त्रोक्त नियम पालने वाले वेदवेत्ता सदाचारी ब्राह्मणोंके सिवाय अन्य मूर्ख दुराचारी ब्राह्मणको श्राद्धमें खिलाना अवश्य निषिद्ध है-क्योंकि-धर्मशास्त्रके आज्ञानुसार असंस्कृत मूर्ख ब्राह्मणको श्राद्धमें भोजन कराना वैसा ही है जैसा कि भस्म (राख) में घीकी आहुति निष्फल होती है । इसलिये श्राद्ध कैसे सिद्ध हो सकेगा ? ॥

सनातनी—प्रिय महाशयजी ! आप जैसा विचार रखते हो वह निःसन्देह सत्य है-परन्तु इस समयानुकूल आप क्षत्रिय-वैश्य वगैरह प्रथम अपने गुण-आचरणोंकी तरफ भी कुछ ध्यान देकर न्यायसे सोचो और कहो-कि नहीं, केवल ब्राह्मणोंको ही दोषयुक्त ठहरानेका झूंठा बहाना करके अपने अवश्य कर्त्तव्य देव-पितृयज्ञादि कर्म करनेसे भागते हो । महाशय जी ! ऐसे आपके [अवश्य कर्त्तव्य कर्म का त्याग (लोप) करने वाले] पाप-रूप निर्बल वचन आप जैसे सच्चे क्षत्रिय वैश्यों के सन्तान के मुख से

निकलें—तो इससे ज्यादा अपने बड़ोंकी [पूर्णभक्ति नम्रताभावसे होनेवाले अश्वमेध राजसूयादि यज्ञोंमें पाई हुई] वीरता और प्रतिष्ठामें धब्बे लगाने वाले और कौनसे वचन बाकी रहे ? ! आ हा ? ! "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" इस महावाक्य के अनुसार ठीक देखा जाता है कि कलि महाराजके प्रताप से बुद्धि और वीरता तथा नित्य कर्मकाण्डों में प्रेम विपरीत (उलटा) हो गया ? ! ? तौभी हे ऋषि मुनियोंके सन्तानो ! और सच्चे शूरवीर पवित्र क्षत्रिय—वैश्योंके पुत्रो ? अब जरा जागो और विचाररूपी आंखसे देखो- सोचो कि हमारे ही जैसे निर्बल संतान पर दयाके भण्डार महर्षि श्रीमनु महाराज ने अपने दयाभाव से अवश्य करने योग्य श्राद्धादि कर्मों की रक्षा होनेमें कलिकालके समय योग्य और अयोग्य ब्राह्मणादिकोंका किस तरहसे निर्णय करके बतलाया है कि—

अन्येकृतयुगेधर्मा—स्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।
अन्येकलियुगेनृणां युगह्रासानुरूपतः ॥ ८५ ॥
तपःपरंकृतयुगे त्रेतायांज्ञानमुच्यते ।
द्वापरेयज्ञमेवाहु—र्दानमेकंकलौयुगे ॥ ८६ ॥

अर्थात्—सत्ययुग में और धर्म, त्रेतामें और, द्वापरमें और तथा कलियुगमें और । त्रेतादि युगों में युगोंकी हीनता (घटती—बढ़ती) होनेसे धर्म और अधर्म की भी विलक्षणता हो जाती है ॥

As the vegitable. kingdom increases in thier beauty colours and nourishment at thier due time, such as" "spring season" and less in the other seasons similarly in the times of Satyayuga spirituality and religions are more Predom inants and very much less in respective Yugos Treta, Dwaper and much less in Kaliyuga"

अर्थात्–जैसे ऋतुओंमें पदार्थोंके स्वभाव बदल जाते हैं तैसे ही युगोंमें भी शक्तियोंके फेरफार से पदार्थोंका स्वभाव बदल जाता है और रस, कस, शक्ति–आकार–उमर और कर्म फल आदि भी युगों के बदल जानेसे बदल जाते हैं। यद्यपि तपश्चर्या–आत्मज्ञान–यज्ञ और दान वगैरह सब कर्म सत्य आदि सब युगोंमें सदा सेवन योग्य हैं तथापि सत्ययुगमें तपश्चर्या प्रधान (मुख्य) और अत्यन्त फलदायक है। त्रेतामें आत्मज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान ही मुख्य फलदायक है। इसलिये वेदशास्त्र पठन और उनके अनुसार धर्म कर्म–अनुष्ठान करनेमें जो हीनता हुई है वह केवल ब्राह्मणों में नहीं किन्तु सब वर्णाश्रमोंमें कलियुगके प्रभावसे समान ही हो रही है। फिर केवल ब्राह्मणोंका ही अधिकार मनुस्मृतिके अनुसार देखा जावे तो किञ्चित् अपने आपकी ओर भी सब लोगोंसे दृष्टि की जावे कि मुझमें विशेष धर्मोंकी स्थिति तो किनारे रही परन्तु मनुष्यमात्रका सदा आचरणीय सामान्य धर्म भी कोई है वा नहीं। किन्तु केवल ब्राह्मणों के ही

अधिकार का निर्णय करने पर जोर लगाना और अपनी ओर कुछ नहीं देखना यह बुद्धिमानों और न्यायवर्त्ती विचारवानोंकी रीति नहीं है । क्योंकि श्राद्धादि कर्म करने वाले क्या ब्राह्मण क्या और जातियोंके सब मनुष्यमात्र । अर्थात् सब वेदमतानुयाइयोंको सत्–धर्मका आचरण अपने वर्णाश्रमके मुताबिक ठीक २ करना चाहिये । जैसा कि–महाभारत अनुशासन पर्वमें लिखा है कि—

न्यायार्जितधनस्तत्व–ज्ञाननिष्ठोजितेन्द्रियः ।
श्राद्धकृत्सत्यवादीच सत्कर्मामुच्यतेनरः ॥ १ ॥

अर्थात् न्यायरीति से जो धनसंचय करता है, ईश्वरके तत्वज्ञानके विचार में जिसका निश्चय है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको खोटे विषय भोगोंसे रोका हुआ है अर्थात् गृहस्थाश्रमके धर्मोंमें दृढ स्थित है तथा श्राद्धादि देव–पितृकर्म जो सदा करता है और सत्य वचन बोलता है तथा इष्टापूर्त्तादि सत्कर्म करता है वह मनुष्य सब कोई चाहे किसी भी वर्ण का हो तो जन्म मरणरूप संसारक्लेश से छूट जाता है। यही श्लोक याज्ञवल्क्यस्मृतिमें है परन्तु कुछ भेद है । इस श्लोक में लिखे श्राद्धादि सत्कर्म करने वाले सब मनुष्योंमें जो २ गुण चाहिये सो वे ही लोग न्यायदृष्टि से अपने २ में देखें कि उन में ऊपर लिखे गुण कितने और कहांतक हैं–तो सोचने से निश्चय हो जायगा कि इन गुणोंमें से थोड़ा

अंश भी अब के श्राद्धकर्मादि करने वाले सब मनुष्योंमें कठिनतासे प्राप्त हो सकेगा। तो फिर केवल ब्राह्मणोंके ही धर्म का निर्णय करनेमें कटिबद्ध होकर प्रवृत्त होना और अपनी ओर [कि कैसे २ कुकर्म सेवन करने और कैसे २ अन्यायोंसे धन संचय करना और शास्त्रोक्त सदाचार किंचित् भी कभी आचरण नही करना] दृष्टिमात्र नही करनी यह कौन न्याय और बुद्धिमत्ताकी बात है। महाशय जी ! ब्राह्मणोंमें तो कोई न कोई कुछ न कुछ वेदशास्त्र पढ़ेहुए और उसके अनुसार अपना धर्म कर्म अनुष्ठान करने वाले शायद मिलही जावें परन्तु ऐसे प्रश्नकर्त्ता महात्मा को अपनी ओर अपने साथियोंकी ओर दृष्टि करके न्यायसे सोचना चाहिये कि वे लोग सनातनधर्मकी रीति से नित्यकर्तव्य धर्म कर्मका अनुष्ठान (सेवन) करना तो जाने दो परन्तु उनके नवीन मतके गुरु के उपदेश किये ग्रन्थों के अनुसार भी कितने संस्कार उन्हों के हुए हैं और होते हैं। और कितना वेद और वेदाङ्गों का तथा और शास्त्रोंका अध्ययन और प्रतिदिनके सन्ध्यादि पंचयज्ञ कर्म कितने किये जाते हैं कि जिन महाशयोंको दो चार वेदमन्त्रोंके स्वर सहित शुद्ध पाठमात्र उच्चारण करनेका ज्ञान नही है तो उनका अर्थ जानने की तो क्या बात है। तो इन सब उपर लिखे वा कहे कारणोंसे यदि विद्वान् सत्कर्मी पात्र ब्राह्मण जहांतक श्राद्धकर्म करनेके वास्ते

मिलें तहांतक वे अवश्य खोज करके भी श्राद्धकर्ममें लाने योग्य हैं—परन्तु जो समयके अनुसार अधिक उत्तम अधिकारी पात्र ब्राह्मण न मिले तो धर्मरक्षक महर्षि मनु भगवान्ने अध्याय २ श्लोक ११८ में—

गायत्रीमात्रसारोऽपि वरंविप्रःसुयन्त्रितः ।
नायंत्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशोसर्वविक्रयी ॥११८॥

अर्थात्—केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी यदि (सुयन्त्रित) शास्त्रनियमित अर्थात् अभक्ष्य भक्षणादि रहित और व्यभिचारादि कर्मोंसे रहित है तो वह थोड़ा पढ़ाहुआ भी ब्राह्मण समयानुसार अत्यन्त श्रेष्ठ और श्राद्धादि कर्मोंमें योग्य पूजनीय है। परन्तु (अयंत्रित) जो निषिद्ध मद्यमांसादि भक्षण करने वाला और वेंचने वाला है तथा नित्य कर्त्तव्य संध्योपासनादि कर्म नहीं करने वाला और व्यभिचारी वह यदि वेदवेत्ता महान् पण्डित भी हो तो भी वह श्रेष्ठ नहीं और न श्राद्धादि कर्मोंमें लाने योग्य है। अब विचारपूर्वक देखो कि अन्तमें श्री महर्षि मनु भगवान् ने कम से कम केवल गायत्रीमात्र जानने वाले सुलक्षण सुपात्र वैष्णव ब्राह्मण को ही श्रेष्ठ और श्राद्ध के योग्य सिद्ध किया है । इसलिये महर्षि श्रीमनुजीकी आज्ञा से अत्यन्त विद्वान् धर्मज्ञ ब्राह्मणके अभाव में केवल गायत्रीमात्र जानने वाले और सदाचारी सुपात्र ब्राह्मण को ही सत्कारपूर्वक

निमन्त्रण देकर श्राद्धमें श्रद्धासे भोजन कराकर पितृयज्ञको सिद्ध करना हम वेदमतानुयायियोंका मुख्य कर्त्तव्य है। और जंगल वा म्लेच्छादि देशमें सर्वथा ऐसा केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी यदि सुपात्र ब्राह्मण न मिल सके तो—

अलाभेब्राह्मणस्यैव कोशःकार्योवटुःप्रिये।

प्रभासखण्ड वाक्य,।

तथा=विधायवादर्भवटून् आसनेषुसमाहितः।
प्रैषानुप्रैषसंयुक्त-विधानंप्रतिपादयेत्॥१॥

महर्षि श्री देवलस्मृति,

अर्थात्—सुपात्र ब्राह्मण के अभाव में दर्भो की छोटी प्रतिमाएं बनाकर उन को ही ब्राह्मणरूप में कल्पित करके पवित्र आसनों पर बैठाकर श्राद्ध के मन्त्रोसे (प्रैषानुप्रैष) एव गन्ध—सुगन्ध—धूप दीप नैवेद्यादिकों से अर्थात् गंध (चन्दन) पुष्प धूप दीप भोजनादि को उन कल्पित ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धासे अर्पण करके आप ही श्राद्धकर्मका अनुष्ठान पूर्ण करे। यदि वैसा भी न हो सके तो श्रीकात्यायनस्मृतिके वचनानुसार—

आपद्यनग्नौतीर्थेच प्रवासेपुत्रजन्मनि।
आमश्राद्धंप्रकुर्वीत भार्यारजसिसंक्रमे॥१॥
अनग्निरधनोवापि तथैवव्यसनान्वितः।
आमश्राद्धं द्विजःकुर्याद् वृषलस्तुसदैवहि॥२॥

अर्थात्–आपत्कालमें, तथा अग्नि के न मिल सकनेमें, तीर्थमें प्रवास यानी मुसाफरीमें, पुत्रजन्म के समयमें और रजोधर्म में तथा संक्रान्ति अर्थात् पुण्यकालमें "आमश्राद्ध" यानी कच्चा सीधा लेकर पितरोंके निमित्त यज्ञोपवीत वामपार्श्व करके "स्वधा पितृभ्यः इदं अन्नं समर्पयामि" ऐसा उच्चारण करके सुपात्र सदाचारी गरीब ब्राह्मणके घरमें वह अन्न देकर श्राद्धकर्म पूरा करे परन्तु शूद्रजाति हमेशा "आमश्राद्ध" करे अर्थात् कच्चासीधा संकल्प करके ब्राह्मणोंको दे। यदि इतना भी न हो सके तो–

सर्वाऽभावेक्षिपेदग्नौ गवेदद्यादथाप्सुवा।
नैवश्राद्धस्यलोपोऽस्ति पैतृकस्यविशेषतः॥ १ ॥

महर्षि देवलस्मृति॥

अर्थात्–कुछ भी नहीं हो सके तो भी किंचित् कच्चा वा पकाया हुआ भोजन पितरोंके नामसे अग्निमें, अथवा जलमें वा गौको देवे परन्तु पितृकर्म का लोप न करे। और यदि मनुष्य दरिद्री (कंगाल) असमर्थ होनेके कारण इतना भी न कर सके तो—

बृहन्नारदीय पुराणशास्त्रके वचनानुसार–

अथवारोदनंकुर्य्यात्–अत्युच्चैर्विजनेवने।
दरिद्रोहंमहापापी वदेदितिविचक्षणः॥ ॥

बृहन्नारदीय पुराण अध्याय २६॥

इस नारदीय वाक्यानुसार श्राद्धके दिन निर्जन बनमें जाकर "मैं महापापी दरिद्री (कंगाल) हूं"

ऐसे दीन वचन बोलकर पितरोंसे क्षमा मांगे परन्तु पितृकर्मका त्याग न करे । और यदि रोदन करनेमें भी संकोच करे तो–

सर्वाभावेवनंगत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः ।
सूर्य्यादिलोकपालानामिदमुच्चैःपठिष्यति ॥५७॥

नमेऽस्ति वित्तं न धनं न चाऽन्यत्, श्राद्धस्य योग्यं स्वपितृन्नतोस्मि । तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैते भुजौततोवर्त्मनिमारुतस्य ॥५७॥

श्रीवाराहपुराण अध्याय १३ में ॥

अर्थात्–वन में जाकर दोनों भुजाओं को ऊपर करके नम्रता और दीनभावसे हाथ जोड़कर सूर्यादि लोकपालोंके सन्मुख अपनी कुक्षि दिखाकर उच्चस्वर से कहे कि–हेपितृदेवो ! मेरे पास इतना अन्न, धन तथा अन्य कोई भी श्राद्धोपयोगी–पदार्थ कुछ भी नही है–इसलिये मैं अपने पितरोंको केवल नमस्कार पूर्वक प्रार्थना करता हूं कि हे सूर्यादि लोकपालो ! इस मेरी भक्तिरूप प्रार्थना से मेरे पितर तृप्त होकर मुझपर प्रसन्न रहे ॥ इति ॥

समाजी–श्रीमान् पण्डित जी महाराज ? यह मुझे आप श्रीवरों ने ऐसा न्यायरूप युक्तियुक्त ब्राह्मणोका निर्णय करके बतलाया है कि जिस से अब मुझे कोई भी सन्देह वाकी नही रहा और आपत्ति मे भी श्राद्ध करनेका ऐसा धर्मशास्त्रोक्त उत्तम सर्व

मान्य मार्ग बतलाया कि बस अब मैं पूर्णकृतार्थ हुआहूं॥

हे प्रिय परमपूज्य पण्डितजी ! परब्रह्म परमात्मा आप जैसे धैर्यवान् सुशील विद्वान् सत्योपदेशक ब्राह्मणकी सदा प्रतिष्ठा यश बढ़ाये और आप श्रीवरोंको सदा प्रसन्न रक्खे कि जिन श्रीवरोंने नितान्त परमार्थरूप महान् उपकार करके मेरे और बल्कि अन्य मेरे समाजो भाइयों के तथा आस्तिक साधारण सनातनी भ्राताओंके भी अति कठिन सन्देह रूप अन्धकारको प्रबलशास्त्र प्रमाण और अकाट्य सद्युक्तियुक्त वचनों से ऐसे दूर किया है कि जैसे सूर्यनारायणके प्रखर तेजसे संपूर्ण जगत्का अन्धकार नाश व दूर हो जाता है—इसलिये मैं इस श्राद्धविषयमें तो निःसन्देह आप धर्मरक्षकको गुरु समझ कर आप सद्गुरुओंके चरणकमलों में प्रेम से शिर नवाता हूं। हे प्रभो! मुझपर क्षमा करो और मुझको आशीर्वाद देओ !!

सनातनी—प्रिय महाशय जी ! सदासुखी भव ! आयुष्मान्—भव !!

इति श्री श्राद्धपितृमीमांसायां श्राद्धकर्मणि
ब्राह्मणानामधिकाराऽनधिकारनिर्णयने समाप्तोयं षष्ठोऽध्यायः ॥

श्रीसाम्बशिवार्पणमस्तु ॥

ओ३म्—शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

"ॐ–नमोऽन्तर्य्यामिणे"

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

मेरे प्रिय आधुनिक आर्य्यसमाजी महाशयोंको निम्नदर्शित श्राद्धविषयक त्रिंशत् (३०) प्रश्नों के शास्त्रप्रमाण युक्तियुक्त उत्तर देनेके लिये प्रार्थना॥

प्रश्न १–स्वा० दयानन्दजीने सन् १८७५ के सत्यार्थप्रकाशमें "जितने जीवित हों उनके नामसे तर्पण न करे किन्तु जो २ मरगये हों उनके नामसे तर्पण करे" लिखा है सो इसको तुम प्रमाण क्यों नहीं मानते ? । यदि मानते हो तो जीवितोंको श्राद्धतर्पण कहना मिथ्या क्यों नहीं है । यदि कहो कि स्वा० द० ने ऐसा नही कहा और न लिखा किन्तु छपाने शोधने वालोंने वैसा बनादिया है तो क्या तुम में से कोई भी समाजी महाशय वेद पुस्तक हाथमें लेकर शपथसे कहदेगा कि यह सत्य है। अर्थात् स्वामीजीने नही लिखा किन्तु छपाने शोधने वालोंने ही मिलादिया ॥

प्रश्न २–जब अथर्ववेद १८ । १ । ४४ ॥ (असुं य ईयुः) मन्त्रांशका अर्थ प्राणवायुमात्र सूक्ष्मदेहधारी पितर निरुक्तके अनुसार सिद्ध हो चुका है तो जीवित स्थूल देहधारियोंमें वह अर्थ कैसे घट सकेगा। क्या उससे मृतपितर सिद्ध नही हैं ? तथा अथर्ववेद

१८ । २ । ४८ (य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्०) जो पितर बड़े अन्तरिक्ष लोक में प्रवेश करचुके सो क्या तुम्हारे जीवित ही पितर अन्तरिक्ष आकाशमें प्रवेश कर सकते हैं ? । यदि नहीं कर सकते तो मृतपितरोंका श्राद्ध तर्पण उक्त मन्त्रसे सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥

प्रश्न ३—जब अथर्ववेद १८ । ३ । ४४ ॥ (अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत) यहां हविष् खानेके लिये उन पितरोंको बुलाया गया है कि जो मरणानन्तर अग्निमें जलाये गयेथे । क्योंकि (यानग्निरेव दहन्त्स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः) जिनको जलाता हुआ अग्नि चाट जाता है वे पितर अग्निष्वात्त कहाते हैं यह अग्निष्वात्त पदका अर्थ शतपथ ब्रा० में लिखा है तब वे अग्निष्वात्त पितर जीवित कैसे हो सकते हैं । इस प्रमाणसे भी मरोंका श्राद्ध होना सिद्ध क्यों नहीं है ? क्या तुम्हारे मतमें जीवित ही जलादिये जाते हैं और क्या जलजाने पर भी वे लोग जीवित ही बने रहते हैं ? यदि ऐसा हो तो दाहकर्म होजाने पर किसी समाजी को क्या जीवित दिखाओगे ? ॥

प्र० ४—अथर्ववे० १८ । ३ । ७२ (ये ते पूर्वपरागताः) जो पहिले पितर पूर्वकालमें व्यतीत होगये उनके लिये भी तर्पण करना चाहिये । क्या इस प्रमाण से मरेहुये पितरों का श्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं होता ? और क्या ऐसा कथन जीवितोंमें घट सकता है !

प्र- ५—अथर्ववे० १८ । ४ । ४८ । (मृताः पितृषु संभवन्तु) मरे हुए पितर पितृयोनिमें प्रगट हों उन्हींके लिये श्राद्ध तर्पण होता है । क्या यहां मूलवेदमें मृत शब्द नहीं? और क्या इससे मरोंका श्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं होता? ॥

प्र०६—अथर्व० १८ । ४ । ६३ (अधामासि पुनरायातनो गृहान्०) यहां पार्वणादि मासिकश्राद्धमें पितरों का विसर्जन करके महीनेभर बाद फिर बुलाना कहा है। सो क्या जीवित पितरोंको तुम महीने २ में एकही वार भोजन देते हो? क्या वे ऐसा करनेसे जीवित रह सकते हैं? यदि हां कहो तो ऐसे कौन हैं? और (नमः पितृभ्यो दिविषद्भ्यः०) अथर्व वे० १८ । ४ । ८० । दिवि नाम स्वर्गलोक में रहने वाले पितरोंको यहां नमस्कार कहागया है । सो क्या जीवित ही समाजियोंके पितर स्वर्गमें जाते हैं? यदि कोई जीवित स्वर्गमें जाते नहीं दीखें तो इससे मरोंका श्राद्ध करना सिद्ध क्यों नहीं है? ॥

प्र० ७—क्या तुम लोग (अपराह्णः पितृणाम्) इस शतपथ प्रमाणके अनुसार भूखे पिताको भी दोपहरके बाद ही भोजन दोगे? और मनुष्यके भोजनका समय मध्यान्ह लिखा है तो क्या तुम्हारे जीवित पितर मनुष्य नहीं हैं? जब कि मनुष्य हैं तो मनुष्यों और पितरोंका भिन्न समय क्यों रक्खा है? क्या इससे जीवित मनुष्यों से पितरोंका भिन्न

होना सिद्ध नहीं ? तथा जब शतपथ काण्ड २ । ३ ४ । में लिखा है कि (तिरइववै—पितरो मनुष्येभ्यः) मनुष्योंसे पितर छिपे नाम अदृश्य होते हैं । सो क्या जीवित मनुष्य पितर मनुष्यों से कभी छिपे नाम अदृष्ट रह सकते हैं ? क्या इससे मृतपितरोंके लिये श्राद्ध स्पष्ट सिद्ध नहीं है ? एवं शतपथमें पिण्डदान के बाद पीठ फेर लेना लिखा है सो क्या तुम जीवित पितरोंको भोजन परोस कर उनकी ओर पीठ करदेना ठीक समझते और वैसा ही करते हो ? ॥

प्रश्न ८—यदि आपके ही मतमें स्वामी दयानन्द जीने स्वयं संस्कारविधि छपी सं० १९४१ के पृष्ठ १०४ समावर्तनसंस्कारप्रकरण में लिखा है कि "हाथ में जल लेकर अपसव्य यानी यज्ञोपवीत वामपार्श्व करके दक्षिणदिशाकी तरफ मुख करके "ॐ पितरः शुन्धध्वम्" इस मन्त्रसे वह जल पृथ्वी पर छोड़े" सो क्या तुम इससे भी जीवितोंको जलदान मानोगे। यदि जीवितों का ही तर्पण मानना चाहते हो तो (भूमि पर जल छोड़) का काटकर (पिताको भूमि में लिटाकर उस के मुख में जल छोड़े) ऐसा क्यों नहीं बना देते हो ? क्या स्वा० द० के ऐसा लिखने से अब भी मरोंका तर्पण मानना सिद्ध नहीं है ? ॥

प्र० ९—संस्कारविधि सं० १९४१ पृ० १७८—गृहाश्रम प्रकरणमें बलिवैश्वदेवविधि—(ओइम् पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः) इस मन्त्रसे एक ग्रास दक्षिणमें

रखनेको लिखा है सो यह ग्रास वा भाग किनको दिया जाता है ? और दक्षिणमें क्यों धरा जाता है ? क्या इससे मृतश्राद्ध मानना सिद्ध नहीं है ? ॥

प्र० १०–ऋग्वेदादि भूमिकामें स्वा० द० ने "अग्निष्वात्त" का अर्थ अग्निविद्याको जानने वा अग्निसे विशेष कार्य साधन करने वाले अंजनके ड्राईवर आदि किया और आगरे शास्त्रार्थ में स्वा० तुलसीराम आदि समाजी उपदेशकों ने जलेहुए मुर्दा के परमाणु अर्थ किया इन परस्पर विरुद्ध दोनोंमें कौन अर्थ सत्य और दो में कौन एक मिथ्या है ?

प्र० ११ क्या समाजी लोग अग्निष्वात्त पितरों को बुलानेके समय काले २ अंजनके ड्राईवरोंका आवाहन करते हैं अथवा पं० तुलसीरामके किये अर्थानुसार जले हुए मुर्दाके परमाणुओंको (अग्निष्वात्ताः पितरएह गच्छत सदस्सदस्सदत) कहते हैं कि हे जले हुए मुर्दाके परमाणुओ ? तुम लोग यहां आओ, अपने २ आसन पर बैठो और भोजन करो तथा भोजनके बाद हमको बहुतसा धन दे जाओ। सो क्या मुर्दाके जले हुए परमाणु आते, आसनोंपर बैठते, और भोजन करके धन दे जाते हैं ? इससे क्या समाजियों के पितर मुर्दा के जलेहुए परमाणु सिद्ध नहीं हैं ? ॥

प्र० १२–ऋग्वेद भाष्यभूमिकामें स्वा० द० ने प्रतिज्ञा की है कि हम निरुक्त-शतपथादि प्राचीन

आर्षग्रन्थों के अनुकूल वेदार्थ करते और मानते हैं, फिर अग्निष्वात्त पदका अर्थ शतपथ से विरुद्ध मनमाना व्याकरण की स्वरप्रक्रिया से भी विरुद्ध किया है—सो मिथ्या क्यों नहीं ? और ऐसा करनेसे स्वा० द० की पहिली प्रतिज्ञाका खण्डन क्या नहीं होगया? इसका तुम क्या जवाब रखते हो ? ॥

प्रश्न १३—सत्यार्थ-प्रकाश छपे सन् १८८७ के पृष्ठ ८८ वें में स्वामी द० जीने श्राद्धतर्पण का अर्थ करके अखीर में कहा है कि यह जीवितों को है मरों को नहीं, और फिर ऋषितर्पण पितृतर्पण लिखके इस से आगे लिखे अर्थ सिद्ध किये हैं कि—११ ग्यारह प्रकार के पितर ये हैं—

नं० १—जो परमेश्वर परमात्मा और पदार्थविद्यामें निपुण हो वह (सोमसद)

नं० २—जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि के जानने वाले हों वे (अग्निष्वात्त)

नं० ३—जो उत्तम विद्या बुद्धि युक्त उत्तम व्यवहारमें स्थित हों वे (बर्हिषद्)

नम्बर ४—जो ऐश्वर्यके रक्षक महौषधिके पान करनेसे रोग रहित और अन्य के ऐश्वर्य रक्षक, औषधियों को देकर रोग नाशक हों वे (सोमपा) पितर हैं ॥

नम्बर ५—जो मादक (नशेकारक) और हिंसाकारक द्रव्योंको छोड़कर भोजन करते हैं वे (हविर्भुज) पितर ॥

नम्बर ६—जो जाननेके योग्य वस्तुके रक्षक और घृत दुग्धादि खाने पीने वाले हों वे (आज्यपा)

नम्बर ७—जिनका अच्छा धर्म करनेका सुखरूप समय हो वे (सुकालिन्) पितर हैं ॥

नम्बर ८—जो दुष्टोंको दण्ड और श्रेष्ठोंका पालन करने हारे न्यायकारी हों वे (यम) ॥

नम्बर ९—सन्तानोंके अन्न और सत्कारसे रक्षक व जनक हों वे (पिता) ॥

नम्बर १०—जो अन्न और सत्कारोंसे सन्तानोंका मान करें वे (माता) ॥

नम्बर ११—अपनी स्त्री, भगिनी, सम्बन्धी और एक गोत्रका तथा अन्य कोई भद्रपुरुष व वृद्ध हो तो उन सबको अत्यन्त श्रद्धासे उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर पानादि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्ति करना है वह श्राद्ध व तर्पण कहा जाता है ॥ इति ॥

अब समाजी महाशय यहां पर स्पष्टरूपसे बतावें कि नम्बर एक १ के पितरोंमें पदार्थविद्या जानने वाले चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान या अंगरेज, अथवा सभी ही पितर होंगे वा नहीं ? ॥

नम्बर २ दूसरेके पितरोंमें अग्नि और विद्युत् (यानी बिजुली) आदि को समझकर उससे टेली-ग्राम और टलीफोन आदि काम करने व बनानेवाले तारबाबू वगैरह और अग्नि से रेल का अञ्जन तथा और मशीन वगैरह बनाने व चलाने वाले इञ्जिनि-

यर, गार्ड, ड्राईवर और भोइलर फिटर वगैरह आप के पितर होंगे या अन्य कोई ? क्योंकि इस वक्त अग्नि और विजलीको ज्यादा समझने व काममें लाने वाले तो ये ही उपरोक्त विलायत के महाशय और हिन्दुस्तानके मिस्त्री वगैरह हैं ॥

नम्बर ३ में तो अंग्रेजों के सिवाय और कोई होंगे ही नहीं । क्योंकि ये ही १०० में ८८ तक पढ़ेहुए और सायन्समें इस वक्त सबसे बढ़े चढ़े हैं कि जिन बुद्धिमानोंकी राह लेकर व उन्होंके रिवाजको पसंद करते हुए अपनी समाजिनी लेडियोंको अंगरेजी लेडियोंके समान छूट घूमने फिरने और जलसों (उत्सवों) में सहस्रों मनुष्यों के बीच बैठने व लेक्चरारी करनेमें स्वतन्त्रता देकर हमारी भारतवीरांगनाओंके सनातन पतिव्रत धर्ममर्यादा को तोड़ते हुए स्त्रियोंके परम लज्जारूप आभूषणोंको अपने ही हाथोंसे छीन रहे हैं कि जिसका नतीजा अब यह निकल रहा है कि वे समाजिनी विदुषियें नियोग और विधवाविवाह करना मंजूर करके ग्यारह ११ पति तक खसम करना चाहरही हैं और दूसरा खसम तो बहुतेरी खान्दानी समाजिनी विधवाओं ने किया है बल्कि पंडित तुलसीरामादि समाजी उपदेशकों ने तो इस निन्दित, व्यभिचाररूप नियोग वा विधवाविवाह पर और भी जोर लगाकर पचकन्यांचरित्रादि * छोटे छोटे ट्रैक्ट रचकर प्रसिद्ध करते हुए उन तर्पत विदुषियोंको प्रसन्न किया है । वाह ! वाह ! ! ये ही तो

इन आर्य्यभासियोंके धर्म हैं ! ! ! अफ्सोस ! और और लज्जा ! हे प्रभो ! हे नाथ । तू ही भारतवीरांगनाओंके पतिव्रतधर्म व सनातन आर्य्यमर्यादाकी रक्षा कर ॥ अस्तु ॥

नम्बर ४ में शायद डाक्टर और हकीम ही होंगे । क्योंकि वही लोग औषधि जानते व दूसरों को औषधियें देकर आराम करते हैं ॥

नम्बर ५—में सरावगी, वैष्णव, शैव यह होंगे । क्योंकि इन लोगों के बराबर हिंसाकारक मांस और मदिरा आदि मादक द्रव्यों से ज्यादा परहेज दूसरों को नहीं होता ॥

नम्बर ६ में तो सम्पूर्ण संसार ही पितर होगा क्योंकि घी दूध सब ही खाते हैं । बल्कि भंगी चमार आदि और पशु भी दूध पीते हैं। इसलिये घी और दूध खाने पीने वाले सब ही इन समाजियोंके "आज्यपा" नाम वाले पितर होंगे ॥

नम्बर ७ के पितरों में सिर्फ अमीर लोग ही होंगे। क्योंकि उन्हींका सुखरूप अच्छा समय जाता है

और नम्बर ८ में तो सिवाय राजाके कोई हो ही नहीं सकता ? क्योंकि दुष्टों को दण्ड देनेवाला

---

* इन व्यभिचार प्रचारक निन्दित पुस्तकोंका मुखतोड़ जवाब और सद्युक्तियुक्त खण्डन श्री सनातनधर्मरक्षक विद्यावाचस्पति विद्वद्वर प० भीमसेन शर्मादि महोपदेशको के रचित "विधवाविवाहमीमांसा" और "पञ्चकन्याचरित्रादि" पुस्तकोंमें देखो ॥

न्यायकारी राजा ही हो सकता है। अब कहिये कि स्वामी जी के लेखानुसार तो संसारभर चाहे कोई जाति हो आप का पितर अर्थात् पिता हुआ और पुत्र का नाम ही न रहा क्या यह बात यथार्थ है? और इसको आप मानते हैं कि नहीं। अगर मानते हैं तो बस खबरदार हो जाइये? व आजसे रिश्तेका नाम मिटा दीजिये क्योंकि जाहिरा देखनेमें अगर्चे वह आपका भाई या भतीजा या लड़का है या कोई दूसरी कम कौम है परन्तु उस ने भी दूध पिया है व अभीतक दूध पीता होगा आजसे उस को पिता ही कहिये और फिर अगर आप के समाजियोंमें से किसी को कोई जाति ऊंच नीच भली बुरी गाली दे या मारबैठे तो इस का बुरा न मानिये क्योंकि वह भी शायद स्वामी जीके लेखानुसार किसी किस्मके पितरोंमेंसे आपका पितर जरूर ही होगा और कदाचित् अगर और किसी नम्बर में न भी आया तो दूध पीने वाले पितरोंमें तो अवश्य ही आवेगा सिवाय इसके अब किसी आदमीकी तावेदारीमें बल्कि जूतातक उठानेमें आपको परहेज न करना चाहिये क्योंकि संसार में पितृसेवा ही मुख्य * धर्म है

+ वाह!! स्वामीजीने क्याही अच्छा (जीवित पितरोंका) श्राद्ध तर्पण कराया। धन्य भाग्य हैं उन आधुनिक आर्य्योंके कि जो सम्पूर्ण संसारभर के मनुष्योंको अ-

अगर आप इतने पर कहें कि पितृशब्दसे पिता का अर्थ नहीं है तो आप ही कहिये क्या होगा ? जरा स्वामी जीका लेख सत्यार्थप्रकाश पृ० ८८ पंक्ति २३ वा उन्हीका यजुर्वेदभाष्य अध्याय १९ को देखलीजिये॥

प्रश्न १४—स० प्र० पृ० १०० में "धन्वन्तरये स्वाहा। सहद्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। ॐ सानुगायेन्द्राय नमः। ओ३म्—सानुगाय यमाय नमः। ओ३म्—वनस्पतिभ्यो नमः। श्रियै नमः। भद्रकाल्यै नमः। इत्यादि लिखकर कहा है कि रेती वा पृथिवी ही पर पत्र बिछाकर उन पर पूर्वदिशादिके क्रमानुसार उपरोक्त मंत्र पढ़कर अन्नके भाग यानी ग्रास रक्खे, पीछे जो कोई अतिथि हो उस को खिला देवे और नमक मिलाहुआ अन्न अर्थात् दाल भात रोटी शाक वगैरह उठाकर (६) छै भाग पृथिवीमें धरे॥ इति॥

हे प्रिय महाशयो ? अब जिद्द और पक्षपात के पर्दे नेत्रों से हटाओ और अपने उपदेशकों से पूछो कि स्वा० द० जीने इन उपरोक्त मन्त्रोंका अर्थ स्पष्टतया क्यों नही लिखा ? क्या इस मे कोई भेद है क्योंकि और जगह तो स्वामी जी ने एक शब्द भी

पना पिता माता समझकर उनका अत्यन्त प्रेम व श्रद्धासे श्राद्ध तर्पण करते हैं। परन्तु न मालूम कि यह समाजी अपनी स्त्रियोंको (स्वा० द० रचित नम्बर ६ के "आज्यपा" नाम वाले पितरोंमें समझते व मानते हुए भी) क्या मानेंगे या करेंगे अर्थात् दूध घी खाने के कारण अवश्य ही उन अपनी स्त्रियोंको पितृ-सभा में गिनेंगे॥

व्यर्थ नहीं छोड़ा है फिर यहां अर्यो का क्यों भोजन करगये ? क्यों साहब ! इन भागोंसे क्या प्रयोजन है ? आप तो विद्वानोंका नाम देवता कहते हैं फिर यह भाग किसके ? क्या वनस्पति और लक्ष्मी रोटी खाती है या पृथिवी खाने आती है ? ईश्वर मूर्त्तिके सामने तो भोग रखनेमें आप को बड़ा रञ्ज होता है और आप पृथिवी जड़ पदार्थको भोग रखते हैं यह क्या बात है और फिर अनुचरों (लश्कर व सेना) स-हित इन्द्र, वरुण, यम इत्यादिके नामोंसे रखना और उन को भाग देना यह तो आप सनातन कथा ले बैठे, अगर पुरानी नहीं है तो कहिये यम का नाम यहां भी हाकिम ही का होगा या नहीं ? और जब शायद वह अनुचरों के सहित आजावेंगे तब कहिये गरीबका क्या हाल होगा उस का तो एक हो दिन में दिवाला निकलता है फिर ये रोज २ का नियम कहांतक चलेगा ॥

प्र० १५—आप तो विद्वानों को ही देवता कहते हैं फिर कहिये यह भद्रकाली, वनस्पति, जल मरुत इत्यादि भी कोई विद्वान् घर २ फिरने वाले हैं जि-न्हें पृथक् २ भाग देनेको बतलाया है, और जब वि-द्वान् ही देवता हैं तो यह पन्द्रह सोलह नाम अल-हदा अलहदा क्यों; क्या उन विद्वानोंके नामके साथ यह भद्रकाली वनस्पति इत्यादिका विशेषण रहता है सिवाय इसके इन पन्द्रह सोलह विद्वानोंको रोज रोज कहांतक कोई खिलावेगा इस पर अगर आप

कहें कि एक २ ग्रास निकालें तो कहिये कि क्या वे एक ग्राससे सन्तुष्ट हो सकते हैं कभी नहीं ! अगर आप कहें कि ये ईश्वर के नाम हैं तो हम कहते हैं कि ईश्वर एक है एक ही भाग निकालना योग्य है और अगर आप कहें कि उनके अनन्त नाम हैं तो नामानुसार भाग भी अनन्त होना चाहिये फिर ये पंद्रह सोलह ही क्यों ? और आपका ईश्वर निराकार है फिर निराकार ईश्वर कैसे इन साकार पदार्थों को खावेगा क्या निराकार ईश्वर को पाञ्च भौतिक प्राणीकी तरह भूंख लगती है ? यदि नहीं कहो तो फिर ये आपके दिये सब भाग व्यर्थ हैं ? अगर्चे हां कहो कि ईश्वर हमारे इस भक्ति को व्यापक रूप से देखकर प्रसन्न होता है तो अब आप ही फैसला करो कि हम सनातनी और आप समाजियोंमें पक्के (कट्टर) मूर्त्तिपूजक कौन हुए ?

प्रश्न ९६—(आमाश्चसिक्ताः पितरश्चप्रीणिता एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा) व्याकरण महाभाष्य के इस प्रमाण से भी मृत पितरोंका तर्पण करना सिद्ध है। तव ऐसे प्रमाण वेदोक्त होने पर भी मरों के श्राद्ध तर्पण मानने में तुम क्यों हिचकिचाते हो। क्या हमने मृत पुरुषों के श्राद्ध तर्पण की सिद्धि में वेदादि के जो अनेक प्रमाण दिये हैं उनके लिये तुम्हारा कोई उपदेशक या पण्डित हाथ में वेद पुस्तक लेके शपथ कर कह सकेगा कि मृत श्राद्धके लिये ये सत्य २ प्रमाण नहीं हैं ॥

प्रश्न १७—(तृतीयाह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते अथर्व० १८ । २ । ४८) यहां से ऊपर प्रद्यौ नामक तीसरा लोक है जिस में पितर लोग रहते हैं । सो क्या तुम्हारे जीवित पितर कहीं आकाश में लटका करते हैं । और मंत्रमें कहे वे ही पितर हैं जिन के लिये श्राद्ध तर्पण किया जाता है । तब क्या इससे जीवितों के श्राद्ध माननेका खण्डन नहीं होता ?॥

प्रश्न १८—सिद्धान्त शिरोमणि पुस्तक को स्वा० द० ने प्रामाणिक माना है उसमें लिखा है कि (ततः शेषाणि कन्याया यान्यहानितुषोडश । क्रतुभिस्तानितुल्यानि पितृभ्योदत्तमक्षयम् ॥) क्या यह कन्या के सूर्य्य में होने वाले कनागत श्राद्धों के लिये आर्ष प्रमाण नहीं है ? ।

प्रश्न १९—क्या तुम लोगों ने यह मिथ्या कुतर्क नहीं किया है कि राजा कर्ण से चलने के कारण कर्णागत कहाये फिर कनागत अपभ्रंश हो गया । इस से कर्ण राजा के पहिले कनागत श्राद्ध नहीं थे । क्योंकि जब सिद्धान्त शिरोमणि के प्रमाणानुसार कन्यागत शब्द से कनागत हुआ कनागत श्राद्ध सनातन अनादि काल से सिद्ध होने पर तुम्हारा कुतर्क मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं हो गया । क्या अपनी ऐसी २ ऐसी २ मिथ्या कल्पनाओं का निर्मूल खण्डन हो जाने पर अब भी लज्जित नहीं होगे ? ॥

प्रश्न २०-(श्राद्धे शरदः । पा० ४ । ३ । १२ ॥ शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम्) पाणिनि आचार्य के व्याकरण का यह सूत्र है । अर्थ यह है कि शरद् ऋतु नाम कार्तिक में होने वाले श्राद्ध शारदिक कहाते हैं । यहां अन्य ऋतुओं के श्राद्धों का विचार छोड़ के शरद्ऋतु के खास श्राद्धें का प्रमाण होने से क्या इन कनागतों का प्रचार पाणिनि आचार्यसे भी पहिले अति प्राचीन कालसे चला सिद्ध नहीं है?॥

प्रश्न २१-यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के दिये श्राद्ध का फल पिता को नहीं पहुंच सकतातो-

मृतानामिहजन्तूनां, श्राद्धचेत्तृप्तिकारणम् ।
जीवतामिहजन्तूनां, वृथापाथेयकल्पनम् ॥

मरे हुए प्राणियों को यदि श्राद्ध का फल मिल सकता है तब जीवित मनुष्य जब मुसाफिरीमें जावे तब घर के मनुष्य श्राद्ध द्वारा उसकी तृप्ति मार्गमें क्यों नही कर सकते । इस नास्तिक चार्वाकके और तुम्हारे मत में क्या भेद है ? यदि कुछ भेद नहीतो तुम भी नास्तिक सिद्ध क्यों नहीं हुए ?

प्रश्न २२-तुम कहते हो कि मरे हुए पितादिको जन्मान्तर में श्राद्ध तर्पण का फल मिलने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण वा उनके हाथकी रसीद नही आती तो फल पहुंचता है यह कैसे मान लेवें । तब तुमसे पूछा जाता है कि अपने किये शुभाऽशुभ कर्मों का फल जन्मान्तर में अपने को मिल जाता है इस में

क्या प्रमाण है! क्या इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण वा रसीद दिखा सकते हो? जब नहीं दिखा सकते तो यहां भी चार्वाक नास्तिक का मत (ऋणंकृत्वा घृतंपिबेत्) क्यों नहीं मान लेते हो? ॥

प्रश्न २३—तुम कहते हो कि मरजाने पर अन्य के किये कर्म का फल अन्य को नहीं पहुंच सकता तो यदि कोई राजा रईस दशलाख रुपयों का किसी खास के नाम वा सभा के नाम वसीयत नामा कर जावे कि इस धन से अनाथालय, सदावर्त्त वा पाठशाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जाया करें, और वे काम ठीक २ वैसे ही हों तो क्या उन कामों से होने वाले उपकारों का फल उस धन दाता को जन्मान्तर में नहीं मिलेगा? यदि कर्त्ताओंको मिलना कहो तो उन का कमाया धन नहीं है और जिसने वसीयत नामा किया उसको फल न मिले तो क्या ऐसा पुण्य का काम निष्फल होगा? फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कायदे से श्राद्धादि धर्म करनेके लिये पिता अपने पुत्रको धनादि सर्वस्व सौंपता है तब पुत्र कृत श्राद्धादि का फल पिता को क्यों नहीं मिलेगा? ॥

प्रश्न २४—जब कि (आत्मावै पुत्रनामासि) (आत्मावैजायते पुत्रः) इत्यादि श्रुति और (गर्भोभूत्वेहजायते) (भार्यापुत्रःस्वकातनूः) इत्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद वा एकता दिखाई है तब तुम फूट रूप भेद वा अन्य २ होने का झगड़ा क्यों लगाते हो!

प्रश्न २०—(श्राद्धे शरदः । पा० ४ । ३ । १२ ॥ शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम्) पाणिनि आचार्य के व्याकरण का यह सूत्र है । अर्थ यह है कि शरद् ऋतु नाम कार्तिक में होने वाले श्राद्ध शारदिक कहाते हैं । यहां अन्य ऋतुओं के श्राद्धों का विचार छोड़ के शरद्ऋतु के खास श्राद्धों का प्रमाण होने से क्या इन कनागतों का प्रचार पाणिनि आचार्यसे भी पहिले अति प्राचीन कालसे चला सिद्ध नहीं है ॥

प्रश्न २१—यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के दिये श्राद्ध का फल पिता को नहीं पहुंच सकता तो-

मृतानामिहजन्तूनां, श्राद्धचेत्तृप्तिकारणम् ।
जीवतामिहजन्तूनां, वृथापाथेयकल्पनम् ॥

मरे हुए प्राणियों को यदि श्राद्ध का फल मिल सकता है तब जीवित मनुष्य जब मुसाफ़िरीमें जावे तब घर के मनुष्य श्राद्ध-द्वारा उसकी तृप्ति मार्गमें क्यों नहीं कर सकते । इस नास्तिक चार्वाकके और तुम्हारे मत में क्या भेद है ? यदि कुछ भेद नहीं तुम भी नास्तिक सिद्ध क्यों नहीं हुए ?

प्रश्न २२—तुम कहते हो कि मरे हुए [illegible] जन्मान्तर में श्राद्ध तर्पण का फल मिल [illegible] प्रत्यक्ष प्रमाण वा उनके हाथकी रसी [illegible] तो फल पहुंचता है यह कैसे मान [illegible] पूछा जाता है कि अपने किये [illegible] फल जन्मान्तर में अपने को [illegible]

क्या प्रमाण है। क्या इसमें प्रत्यक्षप्रमाण वा रसीद दिखा सकते हो? जब नहीं दिखा सकते तो यहां भी चार्वाक नास्तिक का मत (ऋणंकृत्वा घृतंपिबेत्) क्यों नहीं मान लेते हो? ॥

प्रश्न २३—तुम कहते हो कि मरजाने पर अन्य के किये कर्म का फल अन्य को नहीं पहुंच सकता तो यदि कोई राजा रईस दशलाख रुपयों का किसी खास के नाम वा सभा के नाम वसीयत नामा कर जावे कि इस धन से अनाथालय, सदावर्त्त वा पाठशाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जाया करें, और वे काम ठीक २ वैसे ही हों तो क्या उन कामों से होने वाले उपकारों का फल उस धन दाता को जन्मान्तर में नहीं मिलेगा? यदि कर्त्ताओंको मिलना कहो तो उन का कमाया धन नहीं है और जिसने वसीयत नामा किया उसको फल न मिले तो क्या ऐसा पुण्य का काम निष्फल होगा? फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कायदे से श्राद्धादि धर्म करनेके लिये पिता अपने पुत्रको धनादि सर्वस्व सौंपता है तब पुत्र कृत श्राद्धादि का फल पिता को क्यों नहीं मिलेगा? ॥

प्रश्न २४—जब कि (आत्मावै पुत्रनामासि) (आत्मावैजायते पुत्रः) इत्यादि श्रुति और (गर्भोभूत्वेहजायते) (भार्यापुत्रःस्वकातनूः) इत्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद वा एकता दिखाई है तब तुम फूट रूप भेद वा अन्य २ होने का झगड़ा क्यों लगाते हो!

प्रश्न २५–क्या तुम पिता का अंश पुत्र को नहीं मानते हो। जब अवयवरूप है तो हाथ मिहनत करके रोटी बनाता, मुख चबाने महीन करने में श्रम करता है पर हाथ कुछ भी नहीं खाता मुखको स्वाद आता और पेट कुछ भी मिहनत नहीं करता परन्तु भूंख निवृत्तिरूप मुख्य फल पेटको ही होता है तब अन्य हाथके किये कर्मका फल पेटको क्यों पहुंचता है। क्या इन हाथ मुख पेटमें भी लड़ाई कराओगे वा क्या यहां भी खण्डन करोगे ? ॥

प्रश्न २६–सामवेद भाष्यकार स्वा० तुलसीरामजी ने अपने भास्करप्रकाशके इसी श्राद्धप्रकरणमें बहुतेरे मन्त्रोंके अर्थमें यह लिखा है कि यह हवन हमारे मृत पूर्वजोंके लिये फलदायक हो, अब आप ही बतलाइये कि आपके मृत पूर्वज क्या इस आपके हवनकी गन्ध लेनेको जीते बैठे हैं ? और यदि नहीं बैठे हैं और उनका उनके कर्मानुसार किसी योनिमें जन्म हो चुका है तो फिर यह हवन आपका उनके वास्ते कैसे फल दायक हो सकता है ? और यदि आप का हवन उन को फलदायक हो सकता है तो फिर बतलाइये कि हमारा पिण्डदान वगैरह क्यों हमारे मृत पूर्वजों को फलदायक न होगा ? अब यदि फिर आप कहें कि हमारे स्वा० तुलसीरामजीका ऐसा सिद्धान्त नहीं है तो फिर विशेष बतलाने व दिखलाने की क्या आवश्यकता है ? केवल भा० प्र० पृ० १३८ में अथर्व १८। २। ४८ का ही उसका किया हुआ अर्थ देखकर यदि यथार्थ है तो कुछ लज्जित हो जाइयेगा ॥

प्रश्न २७—यदि फिर आप कहें कि हवन की सुध वायुद्वारा उनको पहुंच सकती है—तो मैं फिर ताहूं कि क्या हमारे पिण्डदानकी और उस भोकी सुगन्धि (जो ब्राह्मणों के लिये बनाया गया उसी वायुद्वारा हमारे पितरोंको न पहुंचेगी ?

प्र० २८—यदि तुम नास्तिकोंके सामने प्रत्यक्षादि श्राद्धादिको सिद्ध न कर सकने के कारण वेदोक्त द्धादिके खण्डनका पाप अपने शिर लादते हो तो । उसी कायदेसे तुम्हारे अन्य मन्तव्य,वेदादि का डन नहीं हो सकता ? ॥

प्रश्न २९-यदि तुम्हारा दावा हो तो अभ्युपगद्धान्त को लेकर हम सनातनी तुम्हारे वेदादि तव्यका खण्डन करनेका नोटिस तुमको देते हैं । क्या तुम अपने मन्तव्यका मण्डन करनेकी शक्ति ाते हो ॥

प्रश्न ३०—जब स्वामी शंकराचार्यजी तथा कुमाल भट्टादि बड़े २ नामी विद्वानों ने नास्तिकों के थ बड़े २ प्रबल शास्त्रार्थ करते हुए भी श्राद्धादि कर्मोंका त्याग वा खण्डन न किया तो नास्तिकों भयसे अपने वेदोक्त धर्मका त्याग करना क्या यह ्हारी निर्बलता नहीं है ? ॥ इत्यलम् ॥

इति श्रीश्राद्धपितृमीमांसायां प्रिय समाजी महाशयेभ्यः श्राद्धविषयक ३० त्रिंशत्प्रश्नानामुत्तरप्राप्त्यर्थं समाप्रार्य सप्तमोऽध्यायः ॥

नवीन पुस्तकों की सूचना ।

१–श्राद्धपितृमीमांसा–यह पुस्तक देवनागरी अक्षर और हिन्दीभाषामें छपा है । इसमें वर्त्तमान आर्यसमाजियों के जितने (श्राद्ध व पितृयज्ञ) कर्म में सन्देह अथवा आक्षेप होते हैं उन सबोंका प्रश्नोत्तररूपमें अत्यन्त प्रबल प्रमाण तथा सद्युक्तियोसे ऐसा निवारण किया गया है कि जिनको एकवार भी आदिसे अन्ततक पढ़नेसे थोड़ी बुद्धि वाला भी असलिक बात ठीक समझ सकता है कि (श्राद्ध व पितृयज्ञ किस कर्मका नाम है, इसका रहस्य क्या है और वेदादि सच्छास्त्रो में यह कर्म किनका अर्थात् जीवितोका वा मृतपितरोका दर्शित है ? । पुस्तकको साईज १८+२२ है ॥

[वेदसंज्ञाविचार]–इस पुस्तकमें वेदादि ग्रन्थ और निरुक्तादिसे ब्राह्मणग्रन्थों का वेदत्व सिद्ध किया है । तथा आर्यसमाजियोंके इसके विपक्षमें दिये प्रमाणों का खण्डन है मू०)॥ पुस्तक नागरी भाषामें है ॥

(३)–[आधुनिक महर्षिकी पोल)–यह ट्रैक्ट श्री १००८ परमपूज्य जगत्गुरु श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश स्वामी शङ्कराचार्यजीके सम्मति पत्र समेत देवनागरी अक्षर हिन्दीभाषामें छपाया गया है । इस में स्वा० दयानन्दसरस्वती (वर्तमान आर्यसमाजियोके ऋषि गुरुजीका संस्कृत व्याकरण में सत्यवक्तृतामें (अर्थात् उनके सत्यवादी होनेमें) तथा उनके स्वरचित ग्रन्थोके पूर्वापर विरोध होनेमें खूब ही पोल खोली व दिखायी गई है कि वह स्वामीजी व्याकरणमें कैसे विद्वान् थे ? । मूल्य)॥ डाकखर्च अलग ॥

मिलनेका पता–सेक्रेटरी सनातनधर्म मण्डलान्तर्गत गीता–पाठशाला मुम्बई बाजार कराची सिन्ध तथा
वैद्यराज सेठ मूलचन्द्र (साध) श्रीगिरिधारीजीके
मन्दिरके पास ठट्टा—सिन्ध

ॐ

श्रीहरिः ॥

श्राद्धपितृमीमांसा

जिसको

"वेदसंज्ञाविचार" और "आधुनिक महर्षि की पोल" नामक पुस्तकों के रचयिता

(सिन्ध) करांची सनातनधर्म मण्डलके संरक्षक पण्डित गोकुल चन्द्र शर्म्मा ने निर्माण किया

Printed by B D.S. at the Brahm Press Etawah city

प्रथमबार १००० } वि० संवत् १९६९ ई० सन् १९१२ { मू० ॥) डा० पृ०

॥ श्रीहरिः ॥

श्राद्धपितृमीमांसा

जिसको

(सिंधु) ठट्ठा देशीय विद्वद्वर पण्डित श्रीवीरभानु शर्म्मात्मज, करांची "सनातन धर्म मण्डलके" संरक्षक

पं० गोकुल चन्द्र शर्म्मा ने

श्रुति (वेद), स्मृति-श्रौतसूत्र-पुराण आदि धर्म शास्त्र एवं श्रीरामायण-महाभारतादि धर्म इतिहासों के प्रबल प्रमाण और सद्युक्तियोंसे अलंकृत करके सर्व आस्तिकजनों के विविधसंदेह निवारणार्थ रचा ॥

और

श्रीमान् क्षत्रिय कुलदिवाकर सनातन धर्म प्रचारोत्साही (लुहाणा वंश तिलक) ठट्ठादेशीय एक उदारचित्तव्यक्ति ने सर्व वेदमतानुयायियों के उपकारार्थ छपाकर प्रसिद्ध किया ॥

प्रथमवार १०००	विक्रम सं० १९६९ ई० सन् १९१२	टपालखर्च अलग.

॥ विषयसूची ॥

॥ पंचम अध्याय में ॥

॥ षष्ठ अध्याय में ॥

नम्रतया सूचना !!

मेरे प्रिय सभ्यगणों को नम्रता से सूचित किया जाता है कि मेरी जन्म भूमि सिन्धु देश होने के कारण मेरा हिंदी भाषा लिखने का ऐसा सरल अभ्यास नहीं है इस लिये कदाचित् कहीं हिन्दी लिखने में अक्षर-शब्द-वा भाषा शैली की गलती मालूम हो जाय तो कृपा करके क्षमा करें और हंस वृत्तिसे इस पुस्तक मे से तत्त्व रूप दूध का ही ग्रहण करें

भवदीय कृपाभिलाषी—गोकुलचन्द्र ॥

•यह पुस्तक सनातनधर्ममण्डल करांची की सहायतार्थ -)। पांच पैसा धर्मार्थ लेकर विना मूल्य दिया जाता है ॥

॥ ॐ ॥

तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि, तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् ॥ कृ० यजु० आरण्यक प्र० १० अनु० ५ ॥

श्रीगणेशायनमः । श्रीविघ्नेश्वरायनमः ॥ श्रीविघ्ननाशायनमः ॥

॥ भूमिका ॥

प्रिय पाठक वृन्द ! ध्यान में रहे कि इस हमारे सनातनधर्म के विरोधी वितण्डावादी दुराग्रही अशास्त्रीय सम्प्रदाय के जन पूर्वकाल से चले आते हैं और अपनी माया रूपी वंचना शक्ति से उक्त धर्म के प्रबंधों को असत्य मानकर अनेक प्रकार के उपद्रवों से आक्रान्त [पीड़ित] करते रहते हैं परन्तु उन पक्षपातियों के विघातों से यह सनातन धर्म अद्यावधि अनवच्छिन्न अग्निदग्ध सुवर्ण की न्याई अपनी कीर्ति रूप निर्मल कान्ति से प्रकाशवान् ही रहा, प्रत्युत वेही द्वेषी निर्मूल हुए। और समय २ के अनुसार अनेक मत तथा पंथ जो श्रुति स्मृति विरुद्ध प्रसरित हुये थे भी घोर रजनी में खद्योत (जुग् नुबीरे) के तुल्य अपना चमत्कार चमकाय क्षणिक अंधकारके साथ ही लय हो

गये । अब इस वर्तमान काल में आधुनिक नवशि-
क्षित युवक जन समाजी भाई जिन्हों की बुद्धि में
विपरीत भाव का आवेश हो रहा है वे सनातनधर्म
निबंध ग्रंथ कृत्य रीतियों को केवल कल्पित मान-
कर अपनी प्रमत्त उक्ति युक्ति कपोल कल्पना को
सत्य मान रहे हैं, और शास्त्र विरोधी जनों के मि-
थ्या प्रलाप कूट निबंधों को सार्थक मानकर प्रत्यय
कर बैठे हैं, प्रत्युत उन्हीं अघटित घटना प्रपञ्च
निबन्धों को वार २ मुद्रायन्त्रों द्वारा प्रवर्तन कर
रहे हैं तथा यत्र २ विद्वद्वरिष्टों ने दंश दिया वा नि-
रुत्तर किया उन पंक्तियों को छोड़कर स्वकल्पित
उक्ति युक्ति स्थापित कर रहे हैं । महा शोक है ?
कि इसी सनातन धर्मावलम्बियों के वंश में उत्पन्न
होकर प्रथम अपने ही सनातन धर्म रूपी वन को
व्यर्थ वितंडा वाग्जाल कुठार से छेदन कर रहे हैं ?
और पूर्व ग्रंथ कर्ता ऋषिगण तथा निज पूर्वज आ-
चार्यों को अल्पज्ञ मानकर अपने ही विशिष्ट वृद्धों
का उपहास कर रहे हैं । यद्यपि अनेक वार प्रत्येक
सनातनधर्म सभाओं में ये वितंडावादी निरुत्तर हो
चुके हैं तथापि—"जानत हैं बूझत नहीं मानत ऐसी
जिन्द । तुलसी इस संसारको हुआ मोतिया विंद"
इत्यादि केवल हठ मात्र स्थित होकर अनभिज्ञ सा-
धारण जन समूह को सन्मार्ग से च्युत करने की
कोशिश कर रहे हैं सो अब इन्होंके अस्थिर कुतर्क

रूप वाग्जाल को श्रुति स्मृति आदि धर्म शास्त्रोंके प्रबल प्रमाण और अकाट्य युक्ति युक्त इस "श्राद्ध पितृमीमांसा" नाम पुस्तक रूप वज्र से निर्मूल छेदन करने के लिये श्रीमान् क्षत्रिय कुल भूषण सद्धर्म प्रचारोत्साही उदार चित्त सेठ जी प्रते निज प्रेम पूरित प्रबंध करने में कोटिशः धन्यवाद देकर १ * गुप्त नाम में सन्मान पत्र अर्पण किया जाताहै॥

सन्मानपत्रम् ॥

सद्धर्ममार्ग परिपोषविधावतन्द्रः ।
ठट्ठा व्रजाऽधिपति कश्चित् क्षत्रिवीरः ॥
सत् श्राद्ध मण्डन मकार यदाज्ञयादः ।
सच्छास्त्रसिद्धनयसंहृतसर्ववादः ॥१॥

अर्थात्—श्रेष्ठ धर्म मार्ग के पालन विधिमें आलस्य रहित "ठट्ठा" नाम व्रजके अधिपति क्षत्रिकुल में वीर किसी एक पुरुष ने पूर्ण प्रेम से, सम्पूर्ण कुतर्कों के निवारण करने वाले श्रेष्ठ शास्त्रों से सिद्ध किये गये युक्तियुक्त इस "श्राद्ध-पितृ-मीमांसा" नाम पुस्तक के रचनार्थ (सर्वोपकार होने में) आज्ञा की ॥१॥ सो—

१ * जिस क्षत्रिय वीर सेठ जी ने ऐसे परमार्थ रूप उत्तम दान में अपना नाम प्रसिद्ध (प्रगट) न कराने में पूर्ण उदारता दिखलाई है अर्थात् "गुप्तदान महापुरुष" का ही अनुसरण किया है। इस लिये सेठ जी के कहे अनुसार नाम प्रगट नहीं किया गया है॥

दुस्तर्कमानव पराकृतशास्त्रसिद्धश्राद्धप्रयोग सम नुष्टितसिद्धिसाधुम्। संदर्भमेतदखिलंरचयामिनूनं ठठ्ठाव्रजाधिपतिक्षत्रिवरेणयुक्तः ॥२॥

शास्त्र विरुद्ध खोटे तर्क करने वाले मनुष्यों से दूर किये गये जो वेदादि श्रेष्ठ शास्त्र सिद्ध "श्राद्ध कर्म प्रयोग" उन के अनुष्ठान को पुनः सिद्ध करने वाले इस संदर्भ अर्थात् व्याख्यान रूप लघु ग्रन्थ को ठठ्ठा नाम व्रजके अधिपति श्रेष्ठ क्षत्रिय की आज्ञा से निश्चय पूर्वक रचता हूं * ॥२॥

सो यह—

"ठठ्ठाव्रजस्थितसुधर्म सभास्थसभ्य-
विप्रेणवीरभान्वात्मज तद्विलेखि ॥
श्राद्धीयकर्मणि कुतर्किकृतानुयोग–
स्तस्योत्तरंभवतु आस्तिकवर्यतुष्ट्यै" ॥३॥

ठठ्ठा नाम व्रजमें स्थित सनातन धर्म सभाके संरक्षक सभ्य श्रीवर पं० वीरभानु शर्मात्मज ब्राह्मण करके लिखा गया (श्राद्ध कर्ममें कुतर्कि लोगों

* यद्यपि मेरे प्रिय सिंधी भ्राताओं को सुगमता से समझने के कारण यह पुस्तक मैंने सिंधी भाषा में ही रचा था जिसकी सूचना मेरे बनाये "आधुनिक महर्षिकी पोल" और "वेद संज्ञा विचार" इन दोनों ट्रैक्टों के पिछारी में छपाई गई थी परन्तु यन्त्रालय वालों से सिंधी भाषा की भाषा शैली ठीक शुद्ध न छाप सकने के कारण पुनः यह हिन्दी में ही होना ठीक समझ कर हिन्दी में छपाया गया है इस लिये मेरे सिंधी भाई मुझे क्षमा करें ॥

से किये गये मिथ्या कुतर्कों का) सत्य समाधान रूप उत्तर आस्तिक जनों के प्रसन्नतार्थ होय ॥ ३ ॥

हे श्रीमान् ! आप सनातनधर्म रक्षक के कर कमलों में श्रीनंदनन्दन के प्रसाद रूप, तथा आशीर्वाद की कुसुमाञ्जली रूप यह "श्राद्ध पितृ मीमांसा' नामक ग्रन्थ अर्पित है। जैसा है आप का है लीजिये ॥

शान्तिरस्तु ! आरोग्यमस्तु !! आयुष्यमस्त !!!

तदीय सार्वदिक शुभचिन्तक गोकुलचन्द्र ।

॥ ॐ ॥

सत्यमेव जयतिनाऽनृतम् ॥

उत्तिष्ठतजाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत ॥

नहिसत्यात्परोधर्मो नाऽनृतात्पातकंपरम्॥

ॐ

"एकं विवेकं नुमः"

॥ प्रार्थना ॥

ओ३म् नमः श्रीसाम्बसदा शिवाय ॥

ओ३म्-सहनाववतुसहनौ भुनक्तुसहवीर्यंकरवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै ॥ १ ॥

ॐ श्रुतिनिगदितधर्मार्कः स्मृतिगलधर्मारुणोदयःशश्वत्। पौराणिकधर्मेद्धः पाखण्डध्वान्तनाशनोजयतु ॥२॥

शुक्लांब्रह्मविचारसारपरमामाद्यांजगद्व्यापिनीम्। वीणापुस्तकधारिणीमभयदांजाड्याऽन्धकारापहाम् ॥ हस्तेस्फाटिकमालिकां विद्धतींपद्मासने संस्थिताम्। वन्देतांपरमेश्वरीम्भगवतीं बुद्धिप्रदांशारदाम् ॥ ३ ॥

दोहा धन यौवन यह जांयगे, जैसे उड़त कपूर।
मन मूरख गोविन्द भज क्यों चाटे जगधूर ॥

सभ्यो ! आज मैं आप महोदयों के सम्मुख शास्त्रोक्त श्राद्ध कर्म पर विचार करने के निमित्त उपस्थित हुआ हूं। आप इस बातको उत्तमता से जानते हो कि मैं न कोई ऐसा व्याख्यान दाता हूं और न महामहोपाध्याय हूं तथा न कदापि इस कार्य को पूर्णतया करने में समर्थ हूं, परन्तु आप धर्म वीरों के उत्साह और [परब्रह्म सच्चिदानन्द कंद श्रीकृष्णचन्द्र जी] की सहायतासे साधारण आस्तिक जनों के सदेह निवृत्यर्थ धर्मरक्षक कतिपय क्षत्रिय-वरों की आज्ञाको शिरोधार्य करके, अपना ही कर्तव्य समझ कर प्रश्न-उत्तर रूप में विविध गहन संदेहोंके निर्मूल करने वाले इस "श्राद्ध पितृ मीमांसा" नाम ग्रंथ को श्रीसद्गुरु निखिल शास्त्र निष्णात [श्रीबालराम जी] (उदासीन) एवं विद्यावाचस्पति विद्वद्वर पं० [श्री भीमसेन शर्मा जी] शास्त्री विद्यावारिधि विद्वद्वर पण्डित [श्री ज्वालाप्रसाद जी] मिश्र तथा कूर्माचल भूषण ऋषिकुल संस्थापक वाग्मिवर पंडित [श्री दुर्गादत्त पन्त जी] इत्यादि महामहोपदेशकों की पूर्ण कृपासे एवं उन्हों के युक्ति युक्त सिद्धान्तानुसार अलंकृत करके आप धर्म रक्षकों के कर कमलों में प्रेम से अर्पण किया जाता है आशा है कि हर्ष पूर्वक इस रत्नको आदि से अन्त तक अवश्य देखकर (पढ़कर) सद्धर्म का पूर्ण लाभ लेकर दीन को कृत कृत्य करेंगे।

प्रार्थी—गोकुलचन्द्र शर्मा।

॥ ॐ ॥

नमोऽन्तर्यामिणे

अथ श्राद्धपितृमीमांसा ।

प्रथमोऽध्यायः ।

"धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः" मनु० ॥

प्रश्नकर्ता समाजी महाशय
और
उत्तरदाता सनातनी पण्डित

समाजी—श्री पण्डित जी महाराज ! दयापाले मेरे इस संदेह का निवारण करो कि "श्राद्ध" क्या है ? अर्थात् श्राद्ध किस कर्म का नाम है और इस का रहस्य क्या है ?

सनातनी—महाशय जी ! आप यदि सनातन एवं वेदोक्त श्राद्ध समझने की सच्ची अभिलाषा करते हो तो मैं आप को प्रबल प्रमाण एवं अकाट्य युक्तियों से श्रेष्ठ शास्त्रोक्त श्राद्ध का भावार्थ और उसका रहस्य भी सुनाना चाहता हूं । जिसको सुनकर और पूर्णतया समझकर तथा अपने अन्य मित्र समाजी भाइयों को भी समझाकर इस श्राद्ध कर्म [पितृयज्ञ] का शास्त्रानुकूल श्रद्धा से अनुष्ठान करके सद्धर्म एवं मोक्ष का पूर्ण २ लाभ लेकर दुर्लभ इस मनुष्य देह को साफल्य करें, यही मेरी दृढ़ आशा है ।

अथैतन्मनुः—(श्राद्धमिति शब्दो वाचको यस्य तत्कर्म श्राद्धशब्दम् इति—मदनपारि

जातः) श्राद्ध शब्दं कर्म प्रोवाच प्रजानिःश्रेयसार्थं तत्र पितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थे मासि मासि कार्यमपरपक्षस्याऽपराह्णः श्रेयान्॥

इत्यादि आपस्तम्बीय मनु सम्मत वचनों से मृत पितरों के निमित्त पितृ देवों के पूजनार्थ होम, पिण्डदान आदि ब्राह्मण भोजन रूप जो सत्कर्म, यही शास्त्रोक्त श्राद्ध शब्दका मुख्य भावार्थ है। तात्पर्य यह कि प्रजाके कल्याणार्थ वेदार्थ ज्ञाता श्री महर्षि मनु महाराजने एक ऐसे शुभ कर्मका उपदेश किया है कि जिसका नाम "श्राद्ध" वा "पितृयज्ञ" है। सो जैसे देवयज्ञ में इन्द्रादि देवताओं का पूजन सत्कार होता है और आहवनीय अग्नि उन के तृप्त्यर्थ होम का आधार है-तैसे इस पितृ यज्ञ में पितर देवों का पूजन सत्कार और इन्होंके तृप्त्यर्थ होम का आधार अग्नि के जगह ब्राह्मणों का मुख है। यह कर्म महीने २ करना चाहिये और इस कर्म के अनुष्ठान में कृष्णपक्ष का अपराह्न (मध्यान्ह) काल अत्यन्त श्रेष्ठ है। तथा—"अपर पक्षे श्राद्धं कुर्वीत" इति कातीयश्राद्धसूत्रे। कातीय श्राद्ध सूत्रमें कहा है कि कृष्णपक्ष में श्राद्ध करे। तथा शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि जिस दिन न पूर्व में और न पश्चिम में चन्द्रमा दीखे उसी दिन पितरों के निमित्त पिण्डदान करे। एवं—

"अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यन्ति तदहः पिण्डपितृयज्ञं कुरुते"॥

आपस्तम्बीय श्रौत सूत्र
तथा कात्यायन श्रौत सूत्र ४।१।१—
प्रथम प्रश्न, तृ० पटल ७ कं० ॥

"अपराह्ने पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्राऽदर्शनेऽमावास्याम्"।

अर्थात्—दो पहरों के बाद जिस दिन चन्द्रमा देखने में न आवे, उस अमावास्या में पिण्ड पितृ यज्ञ करे। प्रयोजन यह कि विवाह और यज्ञोपवीतादि के तुल्य एक खास कर्म का नाम "श्राद्ध" वा पितृयज्ञ है। इसी श्राद्ध में जो जो कृत्य जिस २ प्रकार करना चाहिये और इस श्राद्ध के जितने अवान्तर भेद हैं वे सब श्रुति स्मृति श्रौत गृह्यसूत्र और इतिहास पुराणादि में अति प्राचीन समय से विस्तार पूर्वक लिखे हुए हैं जिन्हों के अनुसार अनादि काल से पद्धतियां भी चली आती हैं। जिस कृत्य में अद्यपर्यन्त किसी भी आस्तिक को कदापि संदेह नहीं होता कि श्राद्ध किसको कहते हैं ? परन्तु अब अनुमान ३० वर्षों से किन्हीं आसुरी सम्प्रदायों के मनुष्यों ने स्वधर्म मर्माऽनभिज्ञ स्वयं भी धर्म से च्युत और अन्य आस्तिक साधारण जन समूह को भी कलिकालके प्रभाव से अधोगति में पहुंचाने के लिये प्रत्यक्ष नेत्रोंमें धूलझोंकते हुए केवल धींगा धींगी

से यह प्रकट किया है कि जीवित माता पिता की सेवा करने का नाम श्राद्ध है। परन्तु इसके लिये लेख प्रमाण वा प्रबल युक्ति इन्हों के पास कोई नहीं। सो अब यह कटता भी जाता है। सारांश यह है कि जैसे विवाह यज्ञोपवीतादि एक२ विशेष विधिसहित कर्म के नाम हैं वैसे ही श्राद्ध-भी एक कर्म का नाम है-और जो (श्रद्धया क्रियते तच्छ्राद्धम्)„ श्रद्धासे किया जाय वह श्राद्ध है" ऐसा अर्थ करके समाजी लोग श्राद्ध को यौगिक मानते हैं वे लोग यह तो बतावें कि वे अश्रद्धासे अपने कौन २ काम करते हैं? यदि समाजोत्सव व्याख्यानादि सभी काम श्रद्धा से करते हैं तो तुम्हारे सभी कामों का नाम श्राद्ध हो गया फिर यह क्यों कहते हो कि„ जीवित माता पिता की सेवा का नाम श्राद्ध है"। क्या मद्य मांस खाने पीने वाले आर्य्य समाजियों का मांस मद्य खाना पीना आदि काम तुम्हारे मत में श्राद्ध नहीं है? क्या उन कामों को वे अश्रद्धा से करते हैं? तथा यदि कोई आ० समाजी महाशय किसी समय प्रारब्ध कर्मानुसार रोग ग्रसित हो जाय तो फिर जब वह महाशय अपने रोग के शान्त्यर्थ दवा औषध) वा अन्य कोई उपाय करे तो क्या वो अश्रद्धा से करेगा? क्या अपने शरीर के आरोग्यतार्थ उपाय करने में उसको श्रद्धा प्रेम न होगा? अर्थात् वह रोगी समाजी अवश्य ही श्रद्धा से अपने शरीर

रक्षा के लिये उपाय करेगा-तब तो उस महाशय के श्रद्धा प्रेम से किये हुये उस उपाय को भी "श्राद्ध" कहना पड़ेगा । क्योंकि उसने श्रद्धा में उपाय किया एवं आ० समाजी अपने शरीर पोषणार्थ जो भोजन करते हैं-सो वह क्या अश्रद्धा से करते हैं ? तथा निद्रा (नींद) करना पायखाने में जाना और शास्त्र नियमानुसार सन्तान उत्पत्ति के लिये स्व-स्त्रीसे संभोग करना इत्यादि सब कुछ वे श्रद्धा और पूर्ण चाहना से करते हैं-तो फिर इन उपरोक्त सब कर्मों का नाम श्राद्ध हुआ ! फिर "श्रद्धया क्रियते तच्छ्राद्धम्" इस पंक्तिका अक्षरार्थ करके सरल सनातनी मनुष्यों को क्यों नाहक भ्रमाते हो और "जीवित माता पिता की सेवा" यह अर्थ उपरोक्त संस्कृत वाक्य में से किन अक्षरों का है और कहां से निकालते हो ? यदि कहो कि हम अनुमान से यह अर्थ निकालते हैं तो अन्य कर्म जो ऊपर दिखलाये गये, (उन्हीं को भी श्रद्धा से होने के कारण श्राद्ध कहना) ऐसा अर्थ आप लोगों के विशाल बुद्धि में नहीं समा सक्ता ? अर्थात् अनुमानसे जैसा यह अर्थ कि श्रद्धा से जीवित माता पिताकी सेवा का नाम श्राद्ध वैसा श्रद्धा से उपरोक्त अन्य कर्मों को करने का भी नाम श्राद्ध हो सकता है। फिर यह क्यों वेद शास्त्र विरुद्ध अर्थ करके ठगीसे सरल आस्तिकों को सन्मार्ग से गिराने के लिये

मिथ्या मनगढत अर्थ करते हो ! कि जीवित माता पितादि की सेवा का ही नाम श्राद्ध है । इसके लिये आपके पास कोई वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है कि जिससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाय कि जीवित माता पितादि की सेवा को ही श्राद्ध कहना और न कदापि मृतकों के निमित्त दिया जाय उसको । यदि कोई ऐसा (मृतकों के निमित्त पिण्डदान के निषेध रूप) वेदशास्त्रों में से प्रमाण आप जिद्दि-यों के पास हो तो कृपा करके शीघ्र स्पष्ट (जाहिर) करके अपना मुख उज्वल करो, अथवा ऐसा साबि-त करदेने के लिये यदि कटिबद्ध न होंगे तो क्या सनातनी धर्मात्मा जन यह नहीं समझेंगे कि-इन आ० समाजियों का वेदोक्त धर्म और जीवितों का श्राद्ध भकना मिथ्या हल्ला और आस्तिक संप्रदाय को धोखा देना मात्र ही है ! परन्तु शास्त्रोक्त श्राद्ध कर्म जिस किसी को भी देखना हो तो वह पार-स्कर गृह्यसूत्र आश्वलायन श्रौत सूत्र, तथा परिशि-ष्ट कातीय श्राद्ध सूत्र आश्वलायन गृह्यसूत्र में एवं शांखायन श्रौत, आपस्तम्ब श्रौत इत्यादि ग्रन्थोंमें दे-खे तो स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि "श्राद्ध" किसको कहते हैं और उसका रहस्य क्या है "श्राद्ध" कोई अप्रसिद्ध (छिपा हुआ) कर्म नहीं है जिसके लिये प्रमाण देने की आवश्यकता पड़े, तथापि वेद विरु द्ध मतावलम्बी जिद्दी मनुष्यों के मद अहंकार रूप

अंधकार को सत्शास्त्र रूपी अखण्ड सूर्य के प्रखर तेज से निवारण करने के लिये दिग्दर्शन मात्र इस प्रथम अध्याय में और विस्तार पूर्वक द्वितीय अध्याय में यथायोग्य समाधान किया जायगा कि श्राद्ध शब्द का शास्त्रों में कैसा अर्थ दिखाया गया है और उस का रहस्य क्या है ॥

यथा महर्षि मरीचि मुनिजन स्पष्ट करते हैं कि–

प्रेतं पितृंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत् प्रियमात्मनः।
श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम् ॥

अर्थ–सात्विक भोजन जो अपने को प्रियहोय वह प्रेतयोनि में गये उस मृतक के निमित्त यथा नाम उच्चारण करके श्रद्धासे जो कुछ दिया जाय उसको ही श्राद्ध कहते हैं वा उसी कृत्य का ही नाम श्राद्ध है। तथा महर्षि पुलस्त्य मुनिजनभी स्पष्टकहतेहैं कि

संस्कृतंव्यंजनाद्यंच पयोदधिघृतान्वितम्।
श्रद्धयादीयतेयस्मात्तेन श्राद्धंनिगद्यते ॥
देशेकालेचपात्रेच श्रद्धया विधिनाचयत्।
पितृनुद्दिश्यविप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम् ॥

भावार्थ–दूध दही औरघी से पकाया हुआ अन्न आदि, श्रद्धा और शास्त्र विधि पूर्वक देश काल एवं सुपात्र ब्राह्मणों का ठीक २ विचार करके पितरों के निमित्त श्राद्ध के योग्य ब्राह्मणों को जो कुछ दिया जाय उसको ही श्राद्ध कहा गया है॥ तथा श्री योगी याज्ञवल्क्य मुनिजी ने आचाराध्याय में भी–

वसुरुद्राऽदितिसुताः पितरःश्राद्धदेवताः ।
प्रीणयन्तिमनुष्याणां पितॄन्श्राद्धेनतर्पिताः २६०॥
आयुःप्रजांधनंविद्यां स्वर्गंमोक्षंसुखानिच ।
प्रयच्छन्तितथाराज्यंप्रीतानृणांपितामहाः।२७०॥

अर्थ–वसु तथा रुद्र एवं अदिति सुत ये तीनों पितर जो श्राद्धके देवता हैं वो श्राद्ध करके स्वयं तृप्त हुए मनुष्यों के पितरों को भी तृप्त करते हैं। और श्राद्ध कर्ता के प्रति भी आयु, प्रजा, धन, विद्या स्वर्ग मोक्ष यथा योग्य सुख प्रदान करते हैं। इन वाक्यों से मृत पितरों का श्राद्ध सिद्ध किया है। तात्पर्य यह कि जैसे परमात्मा के सृष्टि में देवलोक आदि अन्य लोक हैं और उन्हीं के अधिष्ठाता इन्द्रादि देव हैं तैसे कर्मणा पितृलोकः बृहदारण्यक॥

दक्षिणाप्रवणोवैपितृलोकः शतपथ—१३।८।४।७॥

इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से एक पितृलोक भी स्वतन्त्र लोक है जिसके अधिष्ठाता अर्य्यमा अग्निष्वात्त एवं वसुरुद्राऽदिति सुतादि पितृदेव हैं। 'पितृणामर्य्यमाचास्मि' श्रीमद्भगवद्गीता अ० १० श्लो० १२९

अर्थात्–पितृलोक निवासी जो अर्यमा नामक पितर है वह मेरा स्वरूप है। सो ये जो अर्यमादि पितृदेव हैं वेही इस श्राद्ध कर्म में पूजनीय देवता हैं और इन्हीं को ही वेद में देवगन्धर्वों से शतगुणित

अधिक आनन्द का भागी कहा है । * और मरण अनन्तर पुरुष किस योनि में गया है—और कौन देश में है और उसके नाम पर उस के वंशीय पुरुषों ने क्या २ शास्त्रानुकूल कृत्य किया है, इत्यादि सब कर्म के वह समालोचक हैं ? और वही पितृ देव वैदिक मन्त्रोंसे आहूत हुये मृत पितरों के वंशीय पुरुषों करके किये हुये श्राद्ध कर्म में उपस्थित होते हैं और श्राद्ध प्रदत्त आहुति तथा भक्ष्य भोज्य आदि सामग्री के सारांश(तत्व) को वासना रूप से ग्रहण करके श्राद्ध कर्ताके प्रति प्रसन्नता पूर्वक आशीर्वाद देकर वैदिक मन्त्रों से विसर्जित हुये मृतपुरुषों को यथा योग्य सुख का भागीकरते हैं । (यह सब आगे सप्रमाण स्पष्ट होगा)

यद्यपि उन पितरों का स्वरूप हम इन चर्म चक्षुओं से अवलोकन नहीं कर सकते हैं तथापि शास्त्रीय

* सर्वोच्च, सार्वभौम, चक्रवर्ती, निष्कंटक राज्य भोक्ता, निखिल कलाविशिष्ट जो अति बलिष्ठ राजा है उसको जो आनन्द है (जिसको मनुष्यानन्दकी सीमा कही जाती है) उस मनुष्यानन्द से शतगुणित अधिक आनन्द मनुष्य गन्धर्वों को है। और उन्हीं से शतगुणित अधिक आनन्द देवगन्धर्वों को है और उन से शतगुणित अधिक आनन्द पितृलोक निवासी पितरों को है, यह सब तैत्तिरीयारण्यक तथा बृहदारण्यक में स्पष्ट है। इस लिये वे पितृलोक निवासी पितृदेव महान् वैभव वाले समर्थ और सर्वज्ञ हैं ॥

पुरुष (अत्यन्त सत्यवादी पूर्णरीति से शास्त्र मर्यादा पालन करने वाले दृढ़ श्रद्धालु पुरुष) के मन में पितरों का अदृश्य होकर आना अथवा यों कहें कि उस पूर्ण श्रद्धावान् पुरुषको ज्ञानचक्षु से पितरों का दर्शन होना कुछ असंभव नही है। क्योंकि योग शास्त्र में यह विषय स्पष्ट है कि यदि काय रूपमें पुरुष संयम करे तो वह पुरुष अन्यों से अदृश्य हो कर यावत् व्यवहार कर सकता है। (योग दर्शन के तृतीय विभूति पाद के २१ वें सूत्र में यह स्पष्ट है।) तथा श्री वाल्मीकि रामायण में सती श्री सीताजी ने अपने मृत श्वशुर श्री दशरथ जी का श्राद्धभोक्ता मुनीश्वरों के देह में दर्शन किया था यह प्रसंग आगे चतुर्थ अध्यायमें स्पष्ट खोला गयाहै।इति॥

महाशय जी ! अब आपको निःसदेह स्पष्ट ज्ञात हुआ होगा कि श्राद्ध शब्द का शास्त्रोक्त अर्थ क्या है और किस कर्म का नाम श्राद्ध है। तथा उसका रहस्य क्या है सो भी मालूम हुआ होगा॥

इति श्री श्राद्धपितृ मीमांसायां श्राद्धशब्दार्थ तत्स्वरूप रहस्यंच प्रदर्शने प्रथमोऽध्यायः॥

॥ ओ३म् ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

समाजी—श्री पण्डित जी ! यह श्राद्ध शब्द का शास्त्र सम्मत शुद्ध अर्थ तो अच्छी तरह मेरी समझ में आया परन्तु अब कृपा करके इस विषय में मुझे कुछ और ज्यादा वेद शास्त्रों के प्रबल प्रमाणों से स्पष्ट करके बतलाओ कि श्राद्ध मृतकों का ही होता है वा कभी जीवित माता पितादिका भी ?

सनातनी—महाशय जी ! यदि आप जिज्ञासु होकर इस विषय का पूर्ण रीति से वेदादि शास्त्रों द्वारा निर्णय कराना चाहते हो तो मैं भी इस तुम्हारी शंका का वेद शास्त्रों के प्रबल प्रमाण व सद्युक्तियों से निवारण करता हूं आप अब सावधान होकर और पक्षपात रूप जिद्द की लाठी को छोड़कर प्रेमसे सुनो !

"श्राद्ध" जिस कर्म का नाम है वह तो सदैव मृतकों का ही होता चला आया है और हो सक्ता है-जीवित माता पिता आदिकों की सेवा धर्म शास्त्रों में लिखे अनुसार अवश्य करना चाहिये वह पितृ मातृ सेवा एवं गुरु सेवा श्राद्ध से भिन्न एक धर्म सम्बन्धी कर्म है जीवितों की श्राद्ध पद्धति अद्यपर्यन्त बल्कि आर्यसमाजियों से भी न बनी और न कभी देखने में आती और न कभी जीवितों का श्राद्ध होना कहीं देखने में आता है । तथा

श्राद्ध कर्म की पद्धतियें जिन ब्राह्मणग्रंथ मंत्र तथा श्रौत गृह्यसूत्रों से बनी हैं उन सबों में मृतकों का ही श्राद्ध सिद्ध है। इस लिये जीवितों का श्राद्ध कहना निर्मूल केवल हठ मात्र है ॥ अब इस विषय को सिद्ध करने के लिये प्रथम मंत्र संहिता (वेद) के ही प्रमाण दिये जाते हैं। सचेत होकर सुनो।

अथर्ववेद कां० १९ अनु० २ मंत्र ४८ ॥

"उदन्वतीद्यौरवमापीलुमतीतिमध्यमा ।
तृतीयाहप्रद्यौरितियस्यां पितरआसते" ॥

अर्थ—ब्रह्माण्ड के तीन लोकों में बीच का अन्तरिक्ष (भुवः) लोक कहाता है इस मध्य लोकके मंत्र में तीन भाग किये [उदन्वती द्यौरवमा] सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि ज्योतियों का प्रकाश जिसमें फैलता है इस लिये वह (अन्तरिक्ष द्यौ) कहाता है। उस में पृथ्वी की ओर का भाग जल वाला अर्थात् अंतरिक्ष (आकाश) में जो नीलापन छाया हुआ दीखता है वह सूक्ष्म जल है इस जल वाले अन्तरिक्ष भाग का नाम "उदन्वती द्यौ" है। (पीलुमतीति मध्यमा) और जल से ऊपरी आकाश का मध्यम भाग "पीलुमतीद्यौ" कहाता है। और (तृतीयाह प्रद्यौरिति) सब से ऊपरी अन्तरिक्ष का तीसरा भाग सूर्यादि के प्रखर प्रकाश वाला होने से "प्रद्यौ." कहाता है (यस्यां पितर आसते) इसी "प्रद्यौ" नामक अन्तरिक्ष के तृतीय भाग में पितृ-

देव रहते हैं। प्रिय महाशय जी! इन्हीं पितरोंका श्राद्ध होता है। मंत्र में कहे तीसरे आकाश में रहने वाले स्थूल देहधारी जीवित पितर सिद्ध नहीं हो सकते। स्थूल देहधारी पितर पृथ्वीमें रह सकते हैं तृतीय आकाश में नहीं। इससे जीवितों का पितर होना और उनका श्राद्ध मानना दोनों अंश खण्डित हो जाते हैं। हमारा पक्ष केवल यह नहीं है कि हम मृतक का ही श्राद्ध सिद्ध करें किन्तु हमारा मुख्य पक्ष यह है कि स्थूल देहधारी अपने विद्यमान माता पितादि की सेवा का नाम श्राद्ध नहीं है। जीवित और मृत शब्दों में कई कुतर्क हो सकते हैं.जो मृत हैं वो भी जीवित हैं और जो जीवितहैं वे भी मृत हैं। क्योंकि जो मरे हैं वे कहींनकहीं किसी योनि में जन्म लेकर जीवित कहे जा सकते हैं। देव तथा पितरों की भी योनि हैं उन में जीवित कहना बन सकता है। और जो मनुष्यादि जीवित हैं वे भी पूर्व जन्मान्तर में मर चुकने से मृत कहे जा सकते हैं। मृत शब्द की भाषा मुर्दा नहीं है क्योंकि मुर्दा शब्द का संस्कृत शव है। इस लिये शव नाम मुर्दा शरीर का श्राद्ध करना शास्त्रों का सिद्धान्त नहीं। मुर्दों का श्राद्ध कहना उन कुतर्की लोगों का प्रलाप मात्र है। आत्मा वा क्षेत्रज्ञ न मरता है न जन्म लेता है किन्तु भूतात्मा मरता जन्मता है इस लिये [अधा मृताः पितृषु सम्भवन्तु । अथर्व० १८ । ४ । ४८ ॥]

मरे हुए प्राणी (भूतात्मा) पितृ योनि में उत्पन्न हों। इस अथर्ववेद के प्रमाण से भी सिद्ध है कि मृत नाम मुर्दे का नहीं किन्तु भूतात्मा का है। शुभ अशुभ जन्म मरण भूतात्मा के होते हैं यह अंश मैत्र्युपनिषद् के तृतीय प्रपाठक में अच्छी तरह से वर्णन किया है। यदि मृत शब्द का भाषानुवाद कोई लोग करते हैं तो यह उनकी समझ है किन्तु शास्त्रानुकूल नहीं है। इस लिखने से मेरा प्रयोजन यह है कि यदि कोई कुतर्की हमको पकड़े (कि जो लोग पितादि मर गये उन्होंने किसी योनिमें जन्म ले लिया तो वे जीवित हुये उन्हीं का श्राद्ध तुम करते मानते हो इस लिये जीवितोंका ही श्राद्ध तुम ने भी माना वा मान लिया) इस लिये इस कुतर्क को पहिले से ही निर्मूल काट देने के लिये हम अपने साध्य पक्षस्थ प्रतिज्ञा का स्पष्ट व्याख्यान कर देते हैं कि हम उन पिता मातादि का श्राद्ध शास्त्रानुकूल मानते हैं और करते हैं कि जिस भौतिक शरीर से वे हमारे माता पितादि कहाते थे उस शरीर को छोड़कर अन्य किसी योनि में परिणत (प्राप्त) हो गये हों। यही उनका मरना वा मृतक कहाना है॥

तथा—मंत्रसंहिता शु० यजुर्वेद अ० १९। ६० मंत्र से अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त दो प्रकार के पितर लिखे हैं। यथा—

येअग्निष्वात्ताये अनग्निष्वात्ता मध्येदिवः
स्वधयामादयन्ते० ॥ यजु० १९ । ६० एव

ये अग्निदग्धाये अनग्निदग्धा मध्येदिवः स्वधया मादयन्ते० ॥ ऋग्वेद मण्डल १० सू० १५ मं० १४ तथा अथर्व० १८ । २ । ३५

ऊपर लिखे पतों पर उक्त मन्त्र वेद की तीन संहिताओं में है, यजुः संहिता में (अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त) पद हैं उन्हीं दो पदों के स्थान में (अग्निदग्ध अनग्निदग्ध) पद ऋग्वेद अथर्ववेदमें लाये गये हैं (मध्येदिवः स्वधया मादयन्ते) इत्यादि पाठ तीनों वेदों में एकसा ही है इससे सिद्ध होता है कि ऋग्वेद तथा अथर्व० में जिनको (अग्निदग्ध अनग्नि दग्ध) कहा है उन्हीं को यजु० में (अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त)कहा है। क्योंकि ऋग्वेद तथा अथर्व में अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त शब्द उन मन्त्रों में नहीं आये तथा अग्निदग्ध अनग्निदग्ध पद यजु० में नहीं आये इस से सिद्ध होता है कि अग्निष्वात्त और अग्निदग्ध का तथा अनग्निष्वात्त और अनग्निदग्ध का एक ही अर्थ है ॥

पाणिनीय व्याकरण के अनुसार इन शब्दों का अर्थ यह है कि—

"अग्निना + स्वादिताः = अग्निष्वात्ताः । अग्निना + दग्धाः = अग्निदग्धाः ।

जलाते हुए अग्निने जिनका स्वाद ले लिया वा अग्निने जिनको जलाया वे पितर अग्निष्वात्त वा अग्निदग्ध कहाते हैं। इसीप्रकार तृतीया समासमें वेदोंमें-

लिखा अन्तोदात्तस्वर[याथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् ॥ पा० ६ । २ । १४४ सूत्र ॥ (गत्यादिभ्यः परेषां यादि प्रत्ययान्तानामुत्तरपदानामन्त उदात्तो भवति ॥)] इस सूत्र से सिद्ध होता है । सूत्रार्थ यह है कि-गति कारक और उपपदसे परे थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र, और क प्रत्ययान्त उत्तर पदों को अन्तोदात्त हो, इससे अग्नि करण कारक से परे ष्वात्त और दग्ध इन क्त प्रत्ययान्त उत्तर पदों को अन्तोदात्त स्वर हुआ है । यद्यपि ऐसी दशा में जब कि पाणिनीय व्याकरण के अनुसार तथा संहिताओं के परस्पर मेल से अग्निष्वात्त पद का अर्थ सिद्ध होगया कि जो अग्नि से जलाये गये वही पितर अग्निष्वात्त तथा अग्निदग्ध हैं तब हमको अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं । तथापि (अधिकस्याधिकं फलम्) के अनुसार शतपथ ब्राह्मण वेद का भी प्रमाण देते हैं।

"यानग्निरेव दहन्त्स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः ॥ शतपथ ब्रा० २ । ५ । २ । ७॥ "अर्थात्—जलाता हुआ अग्नि ही जिनका स्वाद ले लेता है वे पितर अग्निष्वात्त कहाते हैं । इस शतपथ ब्रा० वेद के प्रमाणसे भी सिद्ध हो गया कि मरने पश्चात् जो अग्नि से जलाये गये वेही मृत पितर पितृ यज्ञ वा श्राद्ध में लिये जाते हैं, मरने परही मनुष्य के शरीर अग्नि से जलाए जाते हैं, तथा जो जलाए गये वे जीवित नहीं रह सक्ते हैं इससे श्राद्ध में मृत पितरों

का ही ग्रहण मन्त्र संहिता के प्रमाणों से सिद्ध हो चुका। ऋग्वेदादि भा० भूमिका पुस्तक के पितृयज्ञ प्रकरण में स्वामीदयानन्द जी ने अग्निष्वात्त शब्द का अर्थ यह किया है कि "अग्नि को अच्छे प्रकार जिसने ग्रहण किया है वे अग्निष्वात्त कहाते हैं"। यह अर्थ संहिताओं के परस्पर मेलसे तथा शतपथ ब्रा० वेद से और पाणिनीय व्याकरण इन तीनों से विरुद्ध है। उक्त स्वामीजी की प्रतिज्ञा उसी भूमिका पुस्तकमें यह थी कि महीधरादि भाष्यकारों का किया हुआ वेदार्थ शतपथादि से विरुद्ध है और हमारा किया अर्थ शतपथादि ब्राह्मण भाग के अनुकूल होनेसे सर्वथा ग्राह्य होगा सो वह प्रतिज्ञा अब निर्मूल हो गई, स्वमुखसे स्वात्मश्लाघा करनी मानो विद्वत्ताको शर्माना है स्वामीजीकी सत्यप्रतिज्ञाकी, एवं संस्कृत में विद्वत्ता की और सत्यवादीपने की तो बात ही क्या कही जाय! आपतो पूर्ण संस्कृतज्ञ, सत्यवादी और पूर्ण त्यागी महर्षियों में मुकुट थे इसीलिये तो आप ऋषिजीकी सेवा में "आधुनिक महर्षिकी पोल" नामक एक ट्रैक्ट भेंट की गई है कि जिस में आप श्री की विद्वत्ता का पूरा २ गान किया है अस्तु तात्पर्य यह कि स्वा० द० जी का किया अग्निष्वात्त शब्दका अर्थ शतपथ ब्रा० से, संहिता से तथा पाणिनीय व्याकरणसे विरुद्ध वा अशुद्ध अवश्य है जिसका समाधान वर्तमान आर्य्यमन्यों

में से कोई भी नहीं कर सकता और जो कोई गिरा पड़ा समाधान करेगा वह युक्ति प्रमाणों से अवश्य कट जायगा और अग्निष्वात्त तथा अग्निदग्ध आदि संहिता के मंत्रों से मरे हुए पितरोंका श्राद्धवापूजन होना अवश्यसिद्ध है जिसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं। मनुष्यके मरने पर दो प्रकार की क्रिया होती है। एक तो मरेहुए मुर्दा को अग्नि में जला देना द्वितीय दो वर्षके भीतर जिन बालकों को वा कुष्ठादि (कोढ़) रोग वालों को वा जिन संन्यासी आदि के लिये शास्त्र में अग्निदाह नहीं कहा है उन को तथा जिनका अग्निदाह किसी खास कारण से न हो सके उन सबको, जल वा वन में फैंक देना वा खोद के गाढ़ देना यह दो प्रकार की क्रिया होती है। ये सब अनग्निष्वात्त वा अनग्निदग्ध कहाते हैं। (अनग्निदग्ध) वा (अनग्निष्वात्त) का यह अर्थ होगा कि जो २ अग्नि से नहीं जलाए गये। उनके विषय में वेद का यह मंत्र प्रमाण है कि अथर्व० कां० १८।२।३४॥

येनिखातायेपरोप्ता येदग्धायेचोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्नआवह पितृन्हविषेअत्तवे ॥

अर्थ—मरने पर जिनको खोदके गाढ़ दिया, जो बन वा जंगल में छोड़ दिये गए, जो अग्नि में जलाए गए तथा जो युधिष्ठिरादिके तुल्य इसी शरीरसे स्वर्ग को चले गए, हे ! अग्निदेव उन सब पितरों को हविष् खानेके लिये इस श्राद्धादि पितृकर्ममें बुलाओ।

इस मंत्रके निर्विकल्प सीधे २ अक्षरार्थसे स्पष्ट ही सिद्ध है कि मरने पश्चात् ही, पृथ्वीमें गाड़देना आदि हो सकता है इस से श्राद्ध में मृत पितरों का आवाहन करना सिद्ध है । वर्त्तमान पार्वणादि श्राद्धोंमें—

आयन्तुनः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः० ॥

अग्निमें जिनका दाहकर्म होचुका है ऐसे सोम गुणों वाले हमारे पितर देवयान अन्तरिक्ष मार्गसे इस श्राद्ध में आवें । इस मन्त्रके अर्थसे भी मरे हुए पितरोंका श्राद्ध सिद्ध है । तथा—

ये पूर्वापरागताअपराःपितरश्च ये । तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ अथर्व० कां० १८ अनु० २ । मं० १२ ॥

अर्थात्, पूर्व जो गये और जो जा रहे हैं उन पितरोंके लिये घृतकुल्या शतधारा होकर प्राप्त होवें। यहां मृतकश्राद्ध निन्दकोंसे पूछना चाहिये कि वे यह तो बतावें कि उक्त मन्त्र में वो आपके कौन जीवित पितर हैं जो पूर्व चलेगये और जा रहे हैं? और किस तरहसे आप उन चलेगए पितरोको घृत की आहुतियें दे सक्ते हो ? क्योंकि वे तो गए और आहुति लेने वाला तो जब समक्षमें अर्थात् सामने हाजिर होता है तब ले सक्ता है सो तो उक्त मन्त्र के "ये पूर्वापरागता" इस पक्ति में वर्त्तमान क्रिया है ही नहीं वहां तो पूर्व चलेगये पितरोंका जिकिर

जनितमपराधम् (पुरुषता) मनुष्यत्वेन हेतुना (कराम) वयं कृतवन्तः, हे पितरः तेन केनचिदपराधेन (नः) अस्मान् मा (हिंसिष्ट) वधिष्ट ।

भावार्थ—हे (विश्वे) निखिल पितरो ! आप(जानुआच्य) वाम जानु यानी बायें घोंटु को भूमि पर निपात (खोर लगाकर) कर (दक्षिणतः निषद्य) इस अग्नि से दक्षिणकी ओर स्थित होकर (इमं यज्ञम्) इस हमारे यज्ञ को [अभिगृणीत] स्तवन यानी अंगीकार कीजिये, और [पुरुषता] वात्सल्य स्वभावरूप मनुष्यपने से, आपका [यद् आगः] [कराम] जो कुछ कर्म वैगुण्ययुक्त [अर्थात् इस यज्ञ कर्म में कुछ कमी वा त्रुटि होजाने रूपी] अपराध किया हो तो तिस किसी अपराध से [नः] हमको [माहिंसिष्ट] हिंसन मत करो । इत्यादि

दिग्दर्शन मात्र दिखायेइन वेदमंत्रों द्वारा मृत पितरों के ही निमित्त श्राद्धादि यज्ञ कर्मों में पितृलोक के अधिष्ठात्री देवों का आवाहन—नमस्कारादि स्तुति और पूजन सिद्ध है । तथा—

"तिरइव वै पितरो मनुष्येभ्यस्तिरइवैतद्भवति" ॥ शतपथ ब्रा० २ । ३ । ४ । २१ ॥

अर्थात्—पितर लोग मनुष्यों से अदृश्य होते हैं और पितरों का भोजन भी अदृश्य सूक्ष्म होता है । इस कथन से भी सिद्ध है कि स्थूल देहधारी पितर होते तो अदृश्य नहीं कहे जाते । इसलिये पिण्डदा-

न संबन्ध में अदृश्य पितर कहने से वे ही प्राण शरीरी वायुकाय सूक्ष्म अदृश्य पितर लेने हैं। इस से भी जीवितों का खण्डन तथा मृत पितरों का श्राद्ध सिद्ध है। तथा—*शतपथ ब्राह्मण में पितरों के लिये प्रत्येक महीने में एक वार और मनुष्यों के लिये प्रति दिन सायं प्रातःकाल दोवार भोजन प्रजापति ने नियत किया। यदि जीवित पितरों को मानें तो वे मनुष्य ही हुए तब बताओ कि वे ऐसे कौन मनुष्य हैं जो महीने में एक वार अमावास्या के दिन ही भोजन करते हों? ऐसा मनुष्य कोई न हो सकने के कारण मनुष्यों से भिन्न मरणानन्तर पितृयोनि गये पितर ऐसे समर्थ होजाते हैं—जिनको महीने भर में एक वार ही भोजन मिलने से तृप्ति रहती कष्ट नहीं होता। इससे भी मृतकों का श्राद्ध सिद्ध है।

शांखायन श्रौतसूत्र पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण में "न जीव.पितुरस्ति," अ० ४ कं० ४ सू० ७॥

अर्थात्—जिसका पिता जीवित हो वह पिण्ड पितृयज्ञ न करे उस के लिये पिण्डपितृ यज्ञ नहीं है। इस प्रमाण से भी जीवित का निषेध करने से मरे पितरों का श्राद्ध अर्थापत्ति से सिद्ध है। अर्थात् जिसका पिता जीवित हो वह श्राद्ध न करे तो यह आया कि जिसका पिता मर गया हो वह पिण्डपितृ

* शतपथ ब्रा० कां० २ प्र० ३ मं० २ और ३ ये मंत्र स्पष्ट रूप से आगे अध्याय ५ में वर्णन किये गये हैं वहां देखो॥

यज्ञ करे तथा शांखायन श्रौत सूत्र साकमेध पर्वस्थ महापितृयज्ञ प्रकरण अ० ३ कं० १६ सूत्र २।

[पितृभ्यो वा सोमवद्भ्यः पितृभ्योबर्हिषद्भ्यः पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्यः]।

सोमवान्, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त इन तीन नाम वाले पितरों के लिये महापितृयज्ञ में भाग दिये जाते हैं। इन में अग्निष्वात्त पितर वोही हैं जो मरणानन्तर अग्निदाह को प्राप्त हुए। इस से भी मृत पितरोंके लिये श्राद्ध होना सिद्ध है तथा पिंडपितृ यज्ञ प्रकरण कात्यायन श्रौत सूत्र २३ अ० ४ कं०१।

[प्रेतेभ्योददाति]

प्रेत नाम मरे हुए पिता पितामहादि के लिये पिण्ड देता है अर्थात् देने चाहिये। अर्थापत्तिसे आया कि जीवितों के लिये नहीं। इस से भी मरे हुओं के लिये पिण्डदान देना सिद्ध है तथा आपस्तम्ब श्रौत सूत्र पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण।

यदि जीवितपिता न दद्यादाहोमात्कृत्वा विरमेत्॥

यदि जिसका पिता जीवित हो वह पिण्डदान न करे तो होम पर्यन्त ही पिण्ड पितृ यज्ञ करके ठहर जावे। इससे भी मरे हुओं के लिये पिण्डदान सिद्ध है। तथा मानव कल्प सूत्र में लिखा है कि।

यदि दद्याद्‌ येभ्य एव पिता दद्यात् तेभ्यो दद्यात्॥

जिसका पिता जीवित हो वह यदि पिण्ड देवे तो जिन पितामहादि मरों के नाम से पिता देवे उन्हींके लिये पुत्र भी पिण्डदान करे अर्थात् अपने जीवित पिता के नाम से पिण्डदान न करे। इससे भी मरे हुए पितादि के लिए पिण्डदान सिद्ध है।

तथा—यजुर्वेदीय कठ शाखा के काठकश्रौत सूत्र में लिखा है कि—

"पिता पुत्रौ चेदाहिताग्नी स्यातां येभ्यः पिता तेभ्यः पुत्रो दद्यात्। पिता प्रेतः स्यात् पितामहो जीवेत् पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्पराभ्याम् द्वाभ्यां दद्यादिति ॥

यदि पिता पुत्र दोनों ने विधिपूर्वक श्रौत स्मार्त्त अग्नियों का स्थापन किया हो तो प्रत्येक अमावास्या के दिन दोनों को पिण्ड पितृयज्ञ करना चाहिये। इस दशा में जिन तीन के नाम से पिता पिण्डदान करे उन्हींके लिये पुत्र भी पिण्ड देवे किन्तु पुत्र अपने जीवित पिता के नाम से पिण्डदान न करे। और यदि पिता मर गया हो पितामह (दादा) जीवित हो तो पुत्र को चाहिये कि पिता के नाम से पिण्डदान देके जीवित पितामह (दादे) को छोड़ उससे पूर्वके प्रपितामह वृद्ध प्रपितामह दोनों के लिये पिण्डदान देवे। यह विषय ऐसाही ज्यों का त्यों मनु० अ० ३ श्लो० २२० । २२१ में भी लिखा

है जिस से सिद्ध है कि मृत पितादिके लिये पिण्ड-दान होता है इसीका नाम श्राद्ध है। प्रयोजन यह कि प्रमाणों से तो अच्छी प्रकार सिद्ध है कि "श्राद्ध" मरे हुए पितादिका होता है जीवितों के सत्कारका नाम „श्राद्ध" किसी ग्रंथ से कदापि सिद्ध नही हो सक्ता है, इत्यलम् विद्वत्सु ॥

इति श्री श्राद्धपितृमीमांसायां मृत पितृणा-मेव श्राद्ध सिद्धि प्रदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

समाजी—श्री पण्डितजी महाराज! मृतकोंकी श्राद्धसिद्धि में ये अत्यन्त प्रबल, शास्त्रप्रमाण और सद्युक्तियां सुनकर अब मेरे हृदयके संशय रूप क-पाट खुल गये हैं और मुझे दृढ विश्वास हुआ है कि „श्राद्ध" मृतकों का ही होना निःसंदेह सत्य एवं वेदानुकूल है। इसलिये हम-अब इन आपके दिये शास्त्र प्रमाण रूप अस्त्रोंको लेकर अपने आर्य्यस-माजी महाशयोंको अविद्या—हठ और पक्षपात रूपी महाशत्रुओंके पञ्जेसे छुड़ाने की एवं वेदोक्त सन्मार्ग पर लाने की यथासंभव कोशिश करते रहेंगे। परन्तु हे पण्डितजी! मुझे यह तो बताओ कि पिता पुत्र का संबन्ध शरीरों के साथ है वा जीवात्मा के साथ?। यदि शरीर के साथ मानो तो यह श-रीर यहीं जला दिया राख भस्म होकर मट्टी में मिल

गया अर्थात् रहा ही नहीं उस शरीर रूप पिताका श्राद्ध पुत्र करही नहीं सकता । और जीवात्मा किसी का पिता वा पुत्र होता ही नहीं । क्योंकि जैसे जीवात्मा न स्त्री न पुरुष और न नपुंसक होता [श्रुतिः- नैव स्त्री न पुमानेष नचैवायं नपुंसकः०] वैसे ही वह किसीका पिता वा पुत्र भी नहीं होता । फिर तुम पिण्डदान का फल किस को पहुंचाते हो ? । अर्थात् मरने पश्चात् उस २ पितादि को सुख पहुंचाने के लिये श्राद्धकरना व्यर्थ समझा जाता है ।

सनातनी—प्रिय महाशयजी ! क्या आप गुरु शिष्य पिता पुत्रादिका संबन्ध नहीं मानते ? यदि मानते हो तो शरीर के साथ वा जीवके साथ, किस के साथ मानते हो ? यदि कहो कि हम प्रत्यक्ष विद्यमान संबन्ध मानते हैं मरने पश्चात् किसी के साथ नहीं मानते तो यह बताओ कि स्वा० दयानन्द को स्वर्गवास हुआ कहने में प्रसन्न और नरक हुआ कहने में अप्रसन्न क्यों होते हो ? तथा स्वा० द० को कोई बुरा कहे वा लिखे तो उसके साथ लड़ने को तय्यार क्यों होते हो ? क्योंकि स्वा० द० का शरीर भस्म हो के पंचतत्व में मिल गया उसके साथ तुम्हारा कोई संबन्ध हो ही नहीं सकता रहा जीवात्मा सो जैसे वह किसी का पिता वा पुत्र नहीं वैसे ही वह किसी का गुरु वा उपदेशक भी नहीं ठहर सकता । इसलिये

तुम को स्वा० दयानन्द का कभी नाम भी नहीं लेना चाहिये। और यदि तुम अब उन की प्रशंसा में सन्तुष्ट प्रसन्न होते और उन को बुरा कहने वाले पर अप्रसन्न होते हो तो तुम्हारे मन से ही मरे जीवोंके साथ संबन्ध सिद्ध हो गया। यह उत्तर तो वैसा ही है जैसा प्रश्न था अब आगे आप जिज्ञासु महाशय को तत्वांश समझाने के लिये इसी अंश पर कुछ विचार लिखते हैं वह प्रश्नका समाधान भी होगा और शास्त्रानुकूल सिद्धान्त ज्ञान का हेतु भी होगा। परन्तु इस गहन विषय को आप पूर्ण ध्यान लगाकर धैर्य से सुनेंगे तो आशा है कि आप शीघ्र ही इस उच्च सिद्धान्त को ठीक २ समझ कर पूरा लाभ ले सकेंगे॥

"जीव वा जीवात्मा क्या है" इस विषय पर अनेक विचार ग्रथों में मिलते हैं जिनका व्याख्यान यहां छेड़ा जाय तो एक यही बड़ा व्याख्यान चल जावे। इस लिये अधिक शास्त्र सम्मत सिद्धान्त जो वास्तव में वेदानुकूल है वही यहां कहते है कि—

वेदके (द्वासुपर्णा०) मन्त्रमें दो आत्मा कहे हैं इन दोनोंमें (अनश्नन्न्यो अभिचाकशीति) जो शुभाशुभ फल सुख दुःख भोग न करता हुआ केवल प्रकाश करता साक्षीरूपसे स्थित है जिसके लिये उपनिषदोंमें (साक्षीचेताकेवलो निर्गुणश्च) इत्यादि कथन लिखा गया है। सो जैसे जपा पुष्पकी छाया (झलक वा आभास) स्वच्छ कांच आदि मे समीप होने के कारण पड़ने से

कांच आदि ठीक उसी पुष्पके रंग से रंगा दीखता है। उसी के अनुसार ऊपर लिखा गया साक्षी आत्मा का आभास अन्तःकरणमें पड़ता है। वास्तवमें अन्तःकरण जड़ है पर चेतन के आभास से चेतन ही प्रतीत हुआ करता है। अपने आभास द्वारा अन्तःकरण को सचेत करता है इसी लिये उपनिषदों में इस आत्मा को चेता कहा गया है। इसी चेता का नाम क्षेत्रज्ञ है यही साक्षात् ईश्वर परब्रह्म परमात्मा है। श्री गीता में लिखा है कि—„क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत!” अर्थात् सब क्षेत्र रूप शरीरों में क्षेत्रज्ञ मुझे परमेश्वर को ही जानो। तथा मनु० अ० १२ में लिखा है कि—„

„योऽस्यात्मनः कारयिता तंक्षेत्रज्ञं प्रचक्षते।
यः करोतितु कर्माणि सभूतात्मोच्यते बुधैः १२
जीव संज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम्।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥१३॥
तावुभौ भूतसपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एवच।
उच्चावचेषु भूतेषु स्थितंतं व्याप्य तिष्ठतः” ॥१४॥

अर्थ—जो इस सचेत शरीरसे कर्म कराने वाला है उसको पण्डित लोग क्षेत्रज्ञ कहते हैं, और जो शुभाशुभ कर्म करता है वह भूतात्मा नाम शरीर कहाता है। तथा शरीर के साथ ही आविर्भूत प्रकट होने वाला जीव संज्ञक तीसरा आत्मा उन दोनों

से भिन्न है। शरीरधारी इसी जीव रूप साधन से शरीर धारण के समय सब सुख दुःख को जानता है। ये दोनों जीव नाम महत्तत्व वा बुद्धि तथा सोलह पंचभूत रूप स्थूल सूक्ष्म शरीर से मिले हुए सब छोटे बड़े शरीरों में व्यापक परमात्मा के सहारे से ठहरे हुए हैं। जैसे सूर्य्य वा दीपकादि का बाहरी प्रकाश आंखों से दिखवाता है वैसे ही क्षेत्रज्ञ साक्षीरूप से अपनी चेतना द्वारा स्थूल सूक्ष्म शरीर से कर्म कराता है। इसी लिये उपनिषदों में ईश्वरको [चेतनश्चेतनानाम्] चेतनोंका भी चेतन कहा है। जाननेका साधन जिससे सुख दुःख जानते हैं वही जीव है और जानने वाला वा करने वाला भूतात्मा है। भूतात्मा और शरीर एक ही के नाम हैं। शरीर तीन प्रकार का है—एक स्थूल द्वितीय सूक्ष्म तथा तीसरा कारण शरीर है। यद्यपि प्रत्यक्ष में स्थूल शरीर कर्म करता हुआ दीखता है। परन्तु स्थूल वास्तव में कर्त्ता नहीं किन्तु सूक्ष्म शरीर मुख्य कर कर्म करने वाला है। स्थूल शरीर का नाम अन्नमयकोष है। प्राणमय और मनोमय कोष का मुख्य संबन्ध सूक्ष्म शरीर के साथ है। मैत्र्युपनिषद् में भूतात्मा शब्द से इसी सूक्ष्म शरीरका गमनागमन जन्म मरण के साथ माना है। यह सर्वतन्त्र नियम है कि जो पदार्थ जैसा स्थूल दीखता है वह वैसा ही ज्यों का त्यों सूक्ष्म दशा में भी अवश्य होता है। क्योंकि सूक्ष्म से ही सब स्थूल प-

दार्थ वृद्धिको प्राप्त हो जाते हैं और स्थूल के अंदर सूक्ष्म रहा करते हैं। जैसे स्थूल वृक्ष अपने सब अंशों सहित प्रत्येक बीज (आम की गुठली आदि) में विद्यमान रहता है और आम आदिके पेड़ (थुर) में आम के फल और बीज का भी सूक्ष्म कारण विद्यमान है वैसे ही मनुष्यादि के स्थूल शरीरों के भीतर सूक्ष्म और कारण शरीर विद्यमान हैं। यही सूक्ष्म शरीर नामक भूतात्मा देव–मनुष्य और तिर्यग् आदि योनियोंमें जाता है यही देव–पितर बनता है इसीके साथ जीवसंज्ञक महत्तत्व भी तिरोभूत दशामें मरणानन्तर रहता है। सूक्ष्म शरीर के साथ स्थूल शरीर का ऐसा ही संबन्ध है जैसा घी के साथ दूधका है। अर्थात् स्थूल का साररूप घृतके जगह पर सूक्ष्म शरीर है और घृत के निकल जाने पर जो दशा दूध की होती वही दशा सूक्ष्मशरीर के निकल जाने पर स्थूल देह की हो जाती है। और जब तक दोनों मिले हुए हैं तब तक दूध के समान हैं। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर का सार (तत्व) है इसकी सिद्धि के लिये छान्दोग्य उपनिषद् में स्पष्ट ही खोलकर लिख दिया है। तद्यथा—

"दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवति ॥१॥ एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समु-

दीपति तन्मनो भवति ॥ २ ॥ अपाᳪ सोम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीपति स प्राणो भवति" ॥३॥ इत्यादि छान्दो० प्र०६।खं०६॥

हे सोम्य श्वेतकेतु ! जैसे दही के मथने पर जो सूक्ष्म सार भाग ऊपर आजाता वह घी होता है वैसे ही खाये हुए अन्न का जो सूक्ष्म सारभाग उदर से ऊपर हृदयादि में आ जाता है वह मन होता है। इस से मन आदि सूक्ष्म शरीर स्थूल देहका सार होना स्पष्ट सिद्ध है। यही सूक्ष्म शरीर देव पितृ आदि योनियों में जाता है। इसी भूतात्मा नामक सूक्ष्म शरीर के साथ पिता पुत्रादि सब संबन्ध मरणाऽनन्तर भी रहता है और सूक्ष्म शरीर में सब अंगोपाङ्ग वैसे ही बने होते हैं जैसे स्थूल में हैं। हरएक वस्तु अन्य दशा में पहुंचने पर भी अपने संबन्ध को अपनी आकर्षण शक्तिसे खैंचता है और वह खिंचा हुआ वहीं पहुंच जाता है। वैसे ही सूक्ष्म शरीर जहां जिस योनि में जन्म लेता वहां अपने स्थूल शरीर के परमाणुओं को खैंच कर फिर नया शरीर बनाता है। इत्यादि सब का सारांश यह है कि जीवात्मा कर्मानुसार स्थूल देह को छोड़ कर सूक्ष्म देहसे कड़ा होकर अन्य २ योनियों में जन्म लेता है और सूक्ष्म शरीर को भी वह जीवात्मा तब छोड़ता है जब कि वह संसार की वासना (अर्थात् बंधन रूप संकल्प विकल्प आदि कामनाओं) से निवृत्त होकर निर्वाण

पद (मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। इस लिये हरएक आस्तिक को चाहिये कि अपने वेद शास्त्रों के आज्ञानुसार शास्त्रविधि से अपने माता–पिता=गुरु आदिकों के सूक्ष्म शरीरोंसे मुख्य संबन्ध मानकर अवश्य ही उन मृत प्राणी के सुख प्राप्त्यर्थ और उन की सद्गत्यर्थ यथाशक्ति एवं पूर्ण श्रद्धासे अन्न–जल आदिसे विधिपूर्वक सत्कार (श्राद्ध) करना चाहिये। और जब कि [आत्मावै पुत्र नामासि०] [आत्मावै जायते पुत्रः] इत्यादि श्रुति और [गर्भो भूत्वेह जायते] [भार्या पुत्रः स्वकातनूः०] इत्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद एकता संबन्ध स्पष्ट दिखाया गया है तो फिर धिक्कार है उन्हों को जो फूट रूप भेद डालते हुए भी यह कहते रहते हैं कि हम ही माता पितादिके सच्चे सेवक और देश भक्त हैं। वाहरे सुपात्र पुत्र ! और देश भक्तो !! क्या यह दलील देना तो नहीं चाहते हो कि पितादि ने बुरे कर्म किये तो उन को अपने कर्मानुसार ईश्वरव्यवस्था से दुःख मिलना नियत है तब पुत्र यदि उनको दुःख से छुड़ाना चाहता है तो ईश्वर की व्यवस्था नष्ट होगी, ईश्वर की इच्छासे विरुद्ध होगा। यदि तुम्हारी ऐसी दलील है तो जीवित माता पिता गुरु आदि की सेवा शुश्रूषा भी तुम लोगों को नहीं करनी चाहिये। क्योंकि पिछले जन्म के कर्मों का जैसा २ शुभाशुभ फल ई-

श्वर ने उनको देना नियत किया है उस ईश्वरीय व्यवस्था में बाधा डालने वाले तुम क्यों नहीं हुए? ऐसी दशामें जीवित माता पिता की सेवा भी तुम को छोड़ना क्यों नही पड़ेगी ? ॥ अर्थात् अवश्यही इस तुम्हारी दी हुई दलील से जीवित माता पितादि की सेवा शुश्रूषा छोड़ना पड़ेगी । तो फिर बताओ कि आप कैसे माता पितादिके सेवक और देश भक्त हुए ? और क्या अपने मृत पितादिकों की मिलकियत (धन माल) के मालिक होने के लिये तो ठीक २ उस मृतक पितादि से संबन्ध मानकर अपने को उसका हकदार बताओ परन्तु उस मृत पितादि के लिये शास्त्र आज्ञा से किंचित् जल और अन्न मात्र दान करनेमे बहाने और कुतर्क करते हो? वाहरे कृतघ्न आर्य्याभासियो ! अफ़सोस ! और लज्जा !!! देखो तो सही कि अन्य धर्मी मुसलमान बादशाह शाहजहां अपने पुत्र औरंगजेब से हिन्दुओं की मातृ पितृ भक्ति की प्रशंसा करते हुए तथा हिन्दुओं के प्रति धन्यवाद देकर यह कहते हैं कि—

„ए पिसर तो अजब मुसलमानी ।
जिन्दगांरा व आब तरसानी ॥
आफरीं हिन्दुआंरा सद्बार ।
मुर्दे गांरा दिहन्द दाय में आब" ॥ ॥ ॥

इत्यलम् विद्वत्सु ॥

इति श्री श्राद्ध–पितृ मीमांसायां मृत संबन्ध निरूपणे तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

समाजी—श्री पण्डित जी महाराज ! अब मेरे हृदय के संदेह निवृत्त होते जाते हैं। आपने बहुत अच्छे ढंग से एवं धर्म शास्त्रोंके प्रबल प्रमाणोंसे मृतकों के साथ [अर्थात् अपने मृत माता पितादि रूप पितरों के सूक्ष्म शरीरों से] संबन्ध होना ठीक २ सिद्ध किया इसलिये मैं आप को अनेक धन्यवाद देकर फिर प्रार्थना रूप में यह भी पूछना चाहता हूं कि कर्मानुसार उच्च नीच योनि में प्राप्त उन हमारे मृत पितादि को श्राद्ध कर्म में दिया हुआ पिण्ड-भोजनादि कैसे पहुंचता है ? अथवा उन को श्राद्ध भोजन पहुंचाने वाले वे कौन हैं जिन में इतनी अलौकिक सामर्थ्य है ?

सनातनी—महाशयजी ! ठीक आपने पूछा है यह प्रश्न इस समय बहुधा समाजी लोग सरल सीधे भोले सनातनियों से पूछकर फूले अंगों नहीं समाते, अर्थात् इस प्रश्न का पूरा ठीक २ उत्तर व समाधान न होने से कठोर हृदय वाले एवं शास्त्रानभिज्ञ समाजी भाई उन विचारे आस्तिक एवं कोमल हृदय वाले सनातनियों को क्षण भर में घबरा देते हैं और अपनी जय मान बैठते हैं। अस्तु जो हो ॥ अब आप ध्यान देकर सुनो। जैसे गर्भिणी अबला स्व पुरुष करके दिये गर्भपोषणार्थ अन्न आदि को भक्षण कर स्वतः तृप्त हुई अपने उदर गत

गर्भ (बालक) को भी तृप्त करती है और गर्भपोषणोपयुक्त अन्न देने वाले को भी प्रत्युपकार रूप फल से संयुक्त करती है अर्थात् उस पुरुष को भी फल भागी करती है। तैसे ही श्राद्ध के देवता जो वसु रुद्र अदितिसुतादि पितर हैं वह श्राद्ध करके तृप्त हुए स्वसंगत पितरों को भी तृप्त करते हैं और श्राद्ध कर्ता को भी स्वर्गादि फल से संयुक्त करते हैं इस अभिप्राय से ही—

"देवान् वै पितॄन् प्रीतान्,मनुष्याः पितरोऽनुप्रीयन्ते, तिस्र आहुतीर्जुहोति, त्रिर्निदधाति,षट् संपद्यन्ते,, ॥४॥

कृष्ण यजु० आरण्यक अष्ट०१ अध्या०३अनु१०॥

अर्थात् देवता रूप पितरों के तृप्त होने के अनन्तर मनुष्य रूप पितर भी तृप्त हो जाते हैं, इसी से ही प्रथम देवता रूप पितरों के अर्थ तीन आहुति करनी चाहिये और फिर मृत मनुष्य रूप पितरों के अर्थ तीन पिण्ड देने चाहिये, इस प्रकार षट् ६ संपन्न होते हैं ॥ तात्पर्य्य यह कि श्राद्धके देवता वसु रुद्रादि पितर श्राद्ध कर्म में—,

निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथाऽऽसीनानुपासते १८९
अध्या० ३ ॥ मनु०

निमंत्रित ब्राह्मणों के शरीर में अदृश्य वायुकाय सूक्ष्म रूप से प्रवेश करके पिण्ड एवं ब्राह्मण भोजनादि के तत्व * को ग्रहण कर स्वयं तृप्त होके

* शंका—किस प्रकार वे पितृदेव श्राद्ध भोजन के तत्त्व को ग्रहण करते हैं ?

समाधान—यह भी हमारे लिये कुछ आश्चर्य जनक नहीं है क्योंकि जब हम पशु पक्षि कीटों में परमेश्वर प्रदत्त अलौकिक सामर्थ्य को प्रत्यक्ष देख रहे हैं तो पितरोंके प्रति प्रदत्त अलौकिक सामर्थ्य हम को कैसे आश्चर्य जनक होगी।

अर्थात्—जैसे परमात्मा प्रदत्त अलौकिक शक्ति विशेष से हस्ती (हाथी) कपित्थ फल को भक्षण कर उस के अन्तर्गत सारांश को ग्रहण कर फिर लीद के संग यथावस्थित (जैसे आगे था वैसाही सारा विना चबाया हुआ) उस फल को निकाल देता है। और जैसे मधुमक्खियां पुष्पों से मकरन्द ग्रहण कर मधुरचना करती हुई पुष्प के किसी अंग को ह्रास (तोर) न कर उस के सारांश रूप सुगंधि को ही ग्रहण कर लेती हैं। वा जैसे जलौका (जोंक) मिश्रित रक्त में से विकृत रक्त रूप एकांश को ग्रहण कर लेती है। वा जैसे कमल के किसी अंश को भी न घटाता हुआ भ्रमर (भौरा) कमल गर्भ केशर मकरन्द का ग्रहण कर लेता है। जैसे जल मिश्रित दुग्ध (क्षीर) में से हंस पक्षी जल को पृथक् करके केवल तत्व रूप दूध को ही ग्रहण कर लेता है। और इसी प्रकार अंगुली के स्पर्श करने से लज्जावती लता (शर्म बूटी) में सकुचित होने की शक्ति भी जान लेनी। और जड़ लोहे में भी चुंबक के सन्निधान से अलौकिक शक्ति जाननी। इत्यादि यदि पदार्थों की विचित्र शक्तियों का मि-

फिर उन मृत मनुष्य पितरों को भी तृप्त करते हैं जिन के निमित्त श्राद्ध किया गया है। और श्राद्ध करने वाले पुण्यात्मा को भी यथा योग्य स्वर्गादि फल प्रदान करते हैं। इस अभिप्राय को ठीक रुसि-द्ध करने के लिये श्री योगीयाज्ञवल्क्य मुनि जी ने भी आचाराऽध्यायमें स्पष्ट दर्शाया है कि—

वसुरुद्राऽदितिसुताः पितरः श्राद्ध देवताः।
प्रीणयन्ति मनुष्याणांपितॄन् श्राद्धेन तर्पिताः २६९
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्तितथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः२७०

वसु तथा रुद्र एवं अदितिसुत, ये तीनों पितर जो श्राद्ध के देवता हैं वह श्राद्ध करके तृप्त हुए-मनु-ष्यों के पितरों को भी तृप्त करते हैं॥ और श्राद्ध कर्ताके प्रति भी आयु, प्रजा धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष यथायोग्य सुख प्रदान करते हैं॥

एव शंतनुजीने भीष्मपितामह जी के प्रति भी यही समाधान किया है कि—

आप्यायिताश्चते सर्वे पुनराप्यायन्ति॥
(महाभारते)

रूपण किया जाय तो एक यही बृहत्कथा होजाय, इसीसे इतने में ही सन्तुष्ट होना चाहिये। साराश यह है कि इस ही प्रकार परमात्मा प्रदत्त अलौकिक शक्ति विशेष से पितर देवता भी श्राद्धीय पदार्थों के साराश (तत्व) को ग्रहणक-रलेते हैं॥ इति॥

सब देवता रूप पितर प्रथम आप स्वयं तृप्त होकर फिर अन्य मनुष्य पितरों को तृप्त करते हैं। तथा च—

एते श्राद्धं सदा भुक्त्वा पितन् संतर्पयन्त्युत।
यत्र क्वचन धर्मज्ञा वर्तमानान्हि योगतः॥
विष्णुधर्मोत्तर॥

ये जो वसु रुद्र अदितिसुत, श्राद्ध भोजन से तृप्त होकर फिर मृत पुरुषोंको तृप्त करते हैं चाहे वे मृत मनुष्य पितर किसी भी योनि में हों। क्योंकि वह धर्मज्ञ पितृदेव योग बल रूप अलौकिक सामर्थ्य से हर एक प्राणी को जानते हैं॥ इत्यादि धर्मशास्त्रोंके प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि हमारे मृत पितर अपने अच्छे वा बुरे कर्मानुसार चाहे वे किसी भी योनि में क्यों न हों तो भी उन्हों को वहां उसी ही योनि में पितृदेवों के अलौकिक सामर्थ्य से पिण्डभोजनादि श्राद्धीय पदार्थ सूक्ष्म रूप में पहुंच जाते हैं। और जो श्री दशरथ * महाराजादि जैसे अत्यन्त उत्तम पुण्य कर्मों के प्रभाव से देव पितर आदि उत्तम योनियों में गये हुए हैं वे स्वयं अग्निदेवकी, सहायतासे वेद मंत्रों द्वारा आहूत होकर श्राद्ध कर्म में निमंत्रि-

* यह श्री दशरथ महाराजकी कथा आगे पंचम अध्याय में स्पष्टरूपसे वर्णन की गयी है—जहां श्री जानकी जी निमंत्रित मुनियों के देह में अपने श्वशुर दशरथजी का दर्शन करके लज्जित होकर छिपगई थीं॥

त ब्राह्मणों के देह में अदृश्य रूप से आकर पिण्डभोजनादि का तत्व (सारांश) ग्रहण करके तृप्त होजाते हैं। इस की सिद्धि में वेद का प्रमाण यह है कि-

येऽग्निदग्धा † येऽनग्निदग्धा मध्येदिवः स्वधया मादयन्ते। तेभिः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व, मंत्र १४ ॥

ऋग्वेद अ० ६ व० १८ मण्ड० १० अनु० १ सू०१५ अष्ट० ७ ॥ शु० यजु० अध्या० १८ मं० ६० में (अग्नि-ष्वात्ता०) यह पद हैं ॥

अन्वयार्थ.—ये (अग्निदग्धाः) श्मशानप्राप्ताः ये च (अनग्निदग्धाः) श्मशानकृत्यरहितः ये च (दिवो) द्युलोकस्य मध्ये स्वधया (मादयन्ते) तृप्ताश्चरन्ति, हे (स्वराट्) दीप्यमान अग्ने ! (तैः पितृभि) तेभ्यः पितृभ्य (असुनीतिम् (प्राणयुक्तां (एताम्) भक्षण योग्यां तनूं (यथावश) यथा कामं स्व कल्पयस्व।

---

† यहां पर जो अग्निदग्ध पद से जीवित पितरों का ग्रहण करें तो उन महाशयों को अवश्य ही द्वितीय अध्याय में उक्त पद की मीमांसा देख कर अपना सन्देह निवृत्त करना चाहिये ॥

भाषा—हे स्वराट्—दीप्यमान अग्ने ! (ये अग्नि-दग्धाः) जो हमारे पितर अग्नि में दग्ध हुए श्मशान संस्कार को प्राप्त हुए हैं और (येऽनग्निदग्धाः)जो श्मशान संस्कार को [सन्यासी होने के कारण वा किसी अन्य कारण से] नहीं प्राप्त हुए हैं और (दि-वोमध्ये) अन्तरिक्ष लोक में वा स्वर्ग लोक में स्वधा मन्त्र संस्कृत अन्नकी प्राप्ति से जो (मादयन्ते) तृप्त हो कर विचर रहे हैं (तैः पितृभिः) तिन पितरों के प्रति (असुनीतीम्) प्राणयुक्त (एताम्) हवि भक्षणके योग्यता वाली इस (तनूम्) देहकी कल्पना करो जिससे (यथाकायम्) यथेष्ट यहां आकर हवि भक्षण करें । इस वेदमन्त्र के सीधे २ भावार्थसे स्पष्ट सिद्ध है कि स्वर्गादि उत्तम लोकों में जो अत्यन्त पुण्यकर्मों से गये हैं वे हमारे पितर अग्निदेव की कृपा एव सहायतासे सूक्ष्म शोभन देह धारण करके यथेष्ट यहां हमारे पितृयज्ञ (श्राद्ध) में आकर हवि भक्षण करते हैं । इसलिये नीचे लिखे वेदमन्त्रों से पुण्यवान् समर्थ पितरों को यज्ञमें यहां बुलाने के लिये तथा मध्यम यानी साधारण पुण्यकर्म से म-नुष्ययोनिमें प्राप्त एवं (निकृष्ट) पापकर्मानुसार पशुपक्षीआदि योनिमें प्राप्त असमर्थ पितरोंको व-हांही उसी योनिमें तृप्त करनेके लिये वा उन्होंकी उच्चगति करने के लिये श्राद्धकर्म में अग्निदेव की प्रार्थना पूर्वक स्थापना करके उस मे आहुती दी

जाती हैं अर्थात् अग्नौकरण (अग्यारी वा होम) कराया जाता है। सो यथा—

उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥ ७० ॥ यजु० अध्या० १९ ॥ ७० ॥

मन्त्रार्थ—(उशन्तः त्वां निधीमहि) हे अग्ने! तुम्हारी इच्छा करते हुए हम तुमको स्थापन करते हैं (उशन्तः समिधीमहि) यज्ञ की इच्छा से तुम को प्रज्वलित करते हैं (उशन्, उशतः पितॄन्, हविषे, अत्तवे, आवह) चाहते हुए तुम, हवि चाहने वाले हमारे पितरों को इस यज्ञ में हवि भक्षण करने के लिये बुलाओ ॥ ७० ॥ और—

ये चेह पितरो येचनेह यां श्च विद्म याँ२॥ उ च न प्रविद्म। त्वं वेत्थ यतिते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतञ्जुषस्व ।६७॥

यजु० अ० १९ ॥ ६७ ॥

जो मेरे पितर इस लोक में हैं अर्थात् साधारण पुण्य वा निकृष्ट कर्मानुसार मनुष्य वा पशु

पश्वादि योनि में प्राप्त होकर इस पृथ्वीलोक में रहते हैं। और जो पितर इस लोक में नहीं हैं अर्थात् अत्यन्त उत्तम पुण्य से स्वर्गादि उत्तम लोकों में हैं (च, यान्, विद्म: च, यान्, न, प्रविद्म:) और जिन पितरोंको हम जानते हैं, तथा जिन को स्मरण न होने से नहीं जानते हैं, (जातवेदः, ते, यति, त्वम्, उ, वेत्थ,) हे अग्ने ! वह पितर जितने हैं वे तुम हीं जानते हो (स्वधाभिः, सुकृतं, जुषस्व) सो पितृयज्ञ द्वारा उन पितरों के तृप्त्यर्थ श्रेष्ठ अन्न को सेवन करो, ॥ ६७ ॥

यहां "इह,, शब्द से जीते पितरों का ग्रहण नहीं होता किन्तु जिन्हों ने कर्मवश इस लोक में देह धारण किया है अन्यथा " न "प्रविद्म,, इस का शब्दार्थ नहीं घट सकता "विद्म,, शब्द का अर्थ यह है कि जिनको मैं अपना पितर जानता हूं परन्तु कहां हैं यह नही जानता हूं अथवा जिन को जानता हूं बाप–दादे–परदादे, जिन को नहीं जानता इक्कीस पीढ़ी तक यह तात्पर्य है ॥ तथा–

यम॑ग्ने कव्यवाहन॒ त्वञ्चि॒न्मन्य॑से र॒यिम् । तन्नो॑ गी॒र्भिः श्र॒वाय्य॑न्देव॒त्रा प॑नया यु॒जम् ॥६४॥

यजु० अ० १९ ॥ ६४ ॥

हे पितरों को हव्य पहुंचाने वाले अग्ने ! तुम भी जिस हवि रूप अन्नको उत्तम जानते हो (नः,

तं, गीर्भिः, अवाय्यं युजम्, देवत्रा, आपनय) इस लिये हमारे उस वषट्कार आदि वाणियों से सुनने योग्य उचित हवि को पितृ देवताओं के प्रति सब ओरसे पहुंचाओ ॥ ६४ ॥

इत्यादि वेदमन्त्रों के आशय से स्पष्ट सिद्ध है कि अग्नि देवता भी स्वधारूप अन्नकी आहुतियोंको सूक्ष्मरूप से लेजा कर वहां पितरों के प्रति पहुंचा देता है ॥

समाजी—पण्डित जी महाराज ! यह भी तो सुनाओ कि जब यह किसी.को भी मालूम नहीं कि हमारे पितर स्वर्ग में गये वा नरक में तब उन्होंको अन्न वस्त्रादि भेजना क्या विना पते के पुरुष को डांक द्वारा वस्तु भेजनेके तुल्य नहीं और ऐसी अवस्था में उन को भेजने के लिये अन्न वस्त्र ब्राह्मणों के हवाले करना और फिर उन की रसीद का न पहुंचना क्या यह सन्देह पैदा नहीं करता कि न जाने यह माल भेजने वालोंने ही खा लिया हो ? इसलिये हमारे पितरों से माल पहुंचने की रसीद न मिलनेसे हमें विश्वास कैसे हो कि ठीक २ उन्हीं को मिला ?

सनातनी-महाशय जी ! यह तो मैं पहिले शास्त्र प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध करचुका हूं कि हमारे मृत पितर कर्मानुसार चाहे किसी भी उच्च, नीच, योनि में वा स्वर्ग नर्कमें क्यों न गये हों तो भी पितृलोक के अधिष्ठाता वसु—रुद्र—अदिति सुतादि पितृदेव

एवं अग्नि देवता भी, अपने योगबलसे तथा अलौकिक सामर्थ्य से उन पितरों को जानकर वहां ही उन्होंको तृप्त करते हुए सुखभागी करते हैं। बाकी रही हम लोगोंको पूरा २ विश्वास हो जानेके लिये उन्हों की "रसीद,,। सो यह भी ठीक नहीं क्योंकि श्राद्धका संकल्प करते ही समय रसीद लिखी जाती है कि सृष्टिके आरम्भसे वैवस्वतादि अमुक २ मन्वन्तर, चतुर्युगी, युग, सवत्सर, तिथि, वार, मुहूर्त्तादि समयमें, अमुक देशमें, अमुक वर्ण, नाम गोत्रादि, वाला मैं पुरुष वा स्त्री अमुक २ गोत्रादि वाले ब्राह्मण को अमुक २ पिता मातादि के निमित्त अमुक वस्तु वा भोजन वस्त्रादि देता हूं। वहां उस समय बैठे सब मनुष्यों की साक्षी वा गवाही लिखी जाती है। और देवता लोग भी उसमें साक्षी लिखे जाते हैं इसी विचार से मनुजी ने कहा है कि—

मन्यन्तेवैपापकृतो नकश्चित्पश्यतीतिनः।
तांस्तुदेवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः॥
मनु० अ० ८॥

पापी लोग मानते हैं कि यहां एकान्त में हम को पाप करते कोई नहीं देखता, परन्तु यह भूल है क्योंकि उन को देवता लोग और अन्तर्यामी ईश्वर देखा करता है। जो देवादि पाप के गवाह होते हैं वेही श्राद्धादि पुण्यकर्म के भी गवाह हो जाते हैं। वह रसीद आकाशमण्डल रूप कागज में वाणीरूप स्याही से तथा वायुरूप लेखनी से लिखी जाती है।

जैसे फोनोग्राफ के छोटे से आकाशमें, बोले हुए श-ब्द (राग) भर जाते हैं वैसे ही श्राद्धादि के दान की यह संकल्पात्मक रसीद महाकोश में भर जाती है इसीलिये पतञ्जलि मुनि जी ने शब्दों का स्थान आकाश (आकाशदेशः शब्दः) को कहा है। आकाश के ही प्रदेशान्तर में स्वर्गादि किसी योनि में श्राद्धादि दान का सुख सन्तोष प्रसन्नतादि रूप फल जब पितरों को प्राप्त हो जाता है, तब यही पाने वाले के उस रसीद पर हस्ताक्षर होते हैं। और जब श्राद्ध करते ही समय वा करचुकने पर मन वाणी शरीर में वा स्त्री पुत्रादि सब कुटुम्ब में सर्वत्र कुशलता प्रसन्नता आनन्द मंगल दीख पड़े तब यही श्राद्धफल पाने की हस्ताक्षरी रसीद आगई मान लेना चाहिये अर्थात् जानो उसी आकाश मण्डलस्थ रसीद पर दस्तखत हो आये। और यदि अप्रसन्नता अमंगलादि प्रतीत हों तो मानलो कि सफल नहीं हुआ और रसीद पर दस्तखत नहीं किये तब यजमान तथा श्राद्धादि भोक्ता ब्राह्मण का शास्त्रमर्यादा से विरुद्ध करना रूप अपराध दोनों वा किसी एक का हो सकता है उस दशामें केवल ब्राह्मण का ही अपराध मान लेना भी इकतर्फी डिगरी कर देना है। अभिप्राय यह है कि रसीद नाम विश्वास हो जाने का है—यदि विदेश से आई रसीद पर भी विश्वास न हो तो वा सन्देह हो जाय कि अन्य कैसे हस्ताक्षर अन्य भी बना सकता है और फिर पत्रद्वारा पूछने पर भी उसी की ओर से लिख

सकता है कि हां मुझे रु० मिलगये तब विश्वास न हो तो यहां की रसीद भी रद्दी जानो और शब्दप्रमाण रूप वेदादि शास्त्रों पर जिनका अटल विश्वास है उन को संदिग्धात्मक रसीद की अपेक्षा (इच्छा वा जरूरत) ही नहीं है। यदि किसी ऐसे निकटवर्ती अथवा परम मित्र द्वारा कोई वस्तु समाजी मनुष्य अपने जीवित पिता के पास भेजे कि जिस का सर्वांश में पूरा २ विश्वास हो तो वहां समाजी कदापि रसीद नहीं मांगेगा और मांगे तो जानो उस घरू वा परम मित्र का पूरा २ विश्वास नहीं तब वह घरू वा बनावटी भी रसीद पेश कर सकता है। अन्तमें जबतक विश्वास न करो सभी रसीद आदि रद्दी हैं जब विश्वास दृढ़ होगया तब रसीद की आवश्यकता सनातनधर्मियों को नहीं है। और सर्वशुद्ध सनातन धर्मावलम्बियों को वेदादि शास्त्रों पर दृढ़ विश्वास है कि इस निम्नदर्शित वेदमन्त्र में अग्निदेवने हमारे पितरोंको श्राद्धान्न पहुंचाया। और इसी ही वेदमन्त्र को हमारे पितरों की तरफ से ईश्वर द्वारा आई हुई सच्ची रसीद समझते हैं और यह भी विश्वास करते हैं कि श्राद्ध करने से हमारे पितरों की तृप्ति, तथा निःसन्देह सद्गति होती है। और श्राद्ध करने वाले हम लोगों को भी यथायोग्य धन पुत्र-स्वर्गादि सुख प्राप्त होता है—यथा सच्ची रसीद रूप वेदमन्त्र—

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवा-ड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी, प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव–प्रयता हवींषि,,।

ऋ० अ० ६ व० १९ गष्ठ० १०मनु० १ सू० १५ मह०३मं०१२ शुक्लयजु० अ० १९ म० ६६॥ कृ० यजु० का० २ प्र०२६ अनु० १२ मं० ५॥

अन्वयार्थः–हे अग्ने ! त्वमस्माभिः (ईडितः) स्तुत हव्यानि अस्मदीयानि सुगन्धीनि कृत्वा (अवाट्) अवाक्षीत् प्राप्तवानसि ऊड्ढ्वा च (स्वधया) पितृमंत्रेण पितृभ्यः (प्रादाः) दत्तवानसि ते च पितरस्तद् हवि (अक्षन्) भक्षितवन्तः, हे जातवेदस्त्वमपि (प्रयता) पवित्राणि हवींषि (अद्धि) भक्षय ।

भाषा—हे अग्ने ! हम करके स्तुत हुये (त्वम्) आप हमारे दिये हुए हव्य को सुगन्धित कर हवन द्वारा स्वीकार किया, और स्वीकार कर फिर (स्वधया) पितृप्रिय स्वधा इस मंत्र से हमारे पितरों के प्रति प्रदान किया है अत आप करके दिया हुआ जो हवि है उस हवि को (ते) वे हमारे पितर भक्षण करते हैं । हे (जातवेद.) दिव्यप्रकाशस्वरूप अग्ने! (त्वम्) आप भी इन शुद्ध हवियों को भक्षण करो और—

"उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुं

यईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥

यजुर्वेद वाजसने० अ० १९ मं० ४९॥

अन्वयार्थः—अवरेऽस्मिन् भूलोकेऽवस्थिताः पितर उदीरतामूर्ध्वं लोकं गच्छन्तु। मध्यमा मध्यमस्था अन्तरिक्षस्थाः पितरः उदीरतां परासः परलोकेषु लोकेऽवस्थिता देवत्वं प्राप्ताः पितर उदीरतां ततोऽप्यूर्ध्वं ब्रह्मलोकादिषु गच्छन्तु। कीदृशाः पितरः सोम्यासः शान्तिशीलाः सोमपानार्हा वा। ये च असुमीयुर्वायुरूपं प्राप्ताः वायुकायाः सूक्ष्मादृश्याः स्थूलविग्रहाः । अवृकाः शत्रुभावरहिताः समदर्शिनः ऋतज्ञाः सत्यज्ञा यज्ञज्ञा वा स्वाध्यायनिष्ठा वा ते नोऽस्मान्हवेषु आह्वानेषु अवन्तु रक्षन्तु इति प्रार्थयामः॥

भाषा—(अवरे) इस भूलोक में रहने वाले पितर लोग (उदीरताम्) ऊपरी स्वर्गलोक को प्राप्त हों (सोम्यासः) शान्तिशील चन्द्रलोक वासी वा यज्ञों में सोमपान करने वाले (मध्यमाः) मध्य—अन्तरिक्ष लोकस्थ पितर (उदीरताम्) ऊर्ध्वगति को प्राप्त हो और (परासः, उत्) * स्वर्गलोकस्थ

* स्वर्गादि लोको मे रहने वाले पितरोंका शरीर वायुकाय सूक्ष्म अदृश्य होता है यह बात उपरोक्त "असुं य ईयुः" इस वेद वाक्यार्थ से स्पष्ट सिद्ध है कि जिन्होने केवल प्राणमात्र को ही धारण किया है। यहां स्थूल शरीर का स्पष्ट निषेध है॥

पितर उससे भी ऊपर महर्लोकादि को प्राप्त हों-वे पितर कैसे हैं कि (असुं य ईयुः) जिन्होंने प्राणमात्र को धारण किया है अर्थात् वायुकाय सूक्ष्म अदृश्य शरीर वाले स्थूल मनुष्यादि कासा शरीर जिन का नहीं है। (अवृकाः) जिन का कोई शत्रु नहीं (ऋतज्ञाः) जो सत्य को वा यज्ञ को जानने वाले हैं (ते, पितरः) वे पितर लोग (नः) हमारी (हवेषु) श्राद्धादि में आवाहनके समय (अवन्तु) रक्षा करें यह हमारी प्रार्थना है॥

प्रिय महाशय जी ! इन दो मन्त्रों से स्पष्ट सिद्ध है कि अग्नि देवता श्राद्धकर्म में निमन्त्रित ब्राह्मणोंके मन्त्रोच्चारणसे दी हुई पितरों के निमित्त आहुतियों को हमारे पितरों के प्रति वहां पहुंचाके आया, और उन हमारे पितरों की क्रमपूर्वक ऊपर स्वर्गादि लोकों में गति होना एवं स्वर्गादि लोकों में रहने वाले हमारे सामर्थ्यवान् पितर श्राद्ध से तृप्त हो कर हमारी रक्षा करना इत्यादि सब बातों का विश्वास कराने वाली सच्ची साक्षीरूप "रसीद" जब हम को परब्रह्म द्वारा वेदादि शास्त्रों में लिखी मिली है तब हम को संसारी काग़ज़ी रसीद की कौनसी आवश्यकता है अर्थात् संसारी कागज के रसीद की उन नास्तिकों को आवश्यकता है कि जिन्होंका हमारे वेदादि धर्मशास्त्रों पर विश्वास नहीं। इस लिये कहा है कि "नास्तिको वेदनिन्दकः" जिन्हों का वेदशास्त्रों पर विश्वास

नहीं अर्थात् जो वेद की निन्दा करते हैं वेही मनुष्य नास्तिक कहाते हैं इसलिये हम लोगोंको चाहिये कि वेद से दिखाये गये शुद्ध श्राद्ध को विधिपूर्वक करके अपने मृत पितरोंकी सद्गति करें और वेद की आज्ञाको पालन करके अपने हिन्दू मनुष्यत्व को सार्थक करें यही मेरी प्रार्थना है ॥

समाजी—श्री पण्डित जी महाराज ! यह तो बहुत अच्छी न्यायरूप सत्य दलील एवं वेद मन्त्रों के प्रबल प्रमाण से ठीक २ विश्वास दायक "रसीद" दिखलाई । अब मुझे दृढ़ विश्वास हुआ लेकिन एक बात और पूछने की है सो यह कि मृतप्राणी अपने किये पाप—पुण्य कर्मों के अनुसार यदि वह पशु, पक्षी वा यक्ष, राक्षस, पिशाच अथवा देवता होजाय तो फिर श्राद्धकर्म में हमारा दिया हुआ क्षीर, घी, हलुआ, लड्डू, पकवान कचौड़ी वगैरः पदार्थ उन्हीं को कैसे देहानुकूल रुचिकर (प्रिय) होंगे ? अर्थात् पशुओं को घास, सिंहों को मांस, राक्षस—पिशाचों को रुधिर और मांस एवं देवताओं को अमृत वगैरः जब अपने २ शरीरों के अनुकूल प्रिय हैं तब हमारे दिये हुए उक्त लड्डू कचौड़ी आदि पूरी पकवानों से उन्हों की कैसे रुचिपूर्वक तृप्ति होगी? अर्थात् मेरा दिया हुआ सब उन्होंके प्रतिकूल होने से वृथा हो जायगा ? ॥

सनातनी—महाशय जी ! घबराओ मत कुछ अपनी भी अक्ल वा बुद्धि काममें लाओ केवल प्रश्न

करने ही पर सवार न हो जाओ ? महाशय जी सुनो जब कि हमारी अंग्रेज सरकार के राज्यमें भी ऐसा अन्धेर नहीं है कि जब हम लोग, जर्मन–फ्रान्स वा जापान, रशिया वगैरः विलायतोंमें गये हुए अपने मित्र को यदि कुछ रुपया भेज देना चाहें तो क्या येही हमारे एक तोलेके वजन वाले विक्टोरिया वा एडवर्ड अथवा शहनशाह जार्ज दी फिफ्थ के मुहर (प्रतिमा) वाले रुपये वा नोट वगैरह जो यहां पोस्ट आफिस में मनीआर्डर करके दिये जाते हैं वो क्या वहां उक्त विलायतोंमें भी हूबहू उसही मुहर वाले रुपये वा उस ही नम्बर वाले नोट हमारे मित्रको मिलेंगे वा उक्त रुपये नोट वहां अन्य बादशाहत होनेके कारण उपयोगी हो सकेंगे ? नहीं कदापि नहीं। क्योंकि जैसा २ देश और जैसी २ राज्यसत्ता होती है उस के ही अनुकूल रवाज व हुक्म मूजिब उसी ही सिक्के व मुहर के गिनी वा पाउन्ड वगैरह रूपमें हमारे मित्रको मिल जायंगे और उपयोगी भी बन सकेंगे तो इसी ही रीति से परब्रह्म के अटल राज्य में पितृलोक के अधिष्ठाता वस्वादि पितर यहां श्राद्धमें पोस्टमास्टर रूप ब्राह्मणों के मार्फत हमारे पितरों के निमित्त दिये हुए लड्डू–पूरी–कचौरी वगैरह श्राद्धीय पदार्थ के सारांश को ग्रहण करके हमारे मृतपितरोंके प्रति चाहे वे किसी भी योनि में पशु, पक्षी, राक्षस, देवतादि

क्यों न हुए हों तो उसी ही योन्यन्तर्गत देहके अ-
नुकूल करके दे देते हैं। इसलिये हमारे (आप्त)
यानी पूर्ण धर्मात्मा पूर्ण विद्वान् ऋषि-मुनियों ने
कलिकाल में नास्तिकों द्वारा उठने वाले ऐसे नि-
कम्मे खोटे २ सवालोंको निर्मूल करनेके लिये और
आस्तिक जनों को ज्यादा २ सन्तोष या विश्वास
दिलाने के लिये महाभारतादि धर्म इतिहासों में
स्पष्ट करके लिखदिये हैं कि—

देवोयदिपिताजातः शुभकर्मानुयोगतः।
तस्यान्नममृतंभूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छति ॥१॥
गान्धर्वेभोग्यरूपेण पशुत्वेचतृणंभवेत्।
श्राद्धान्नंवायुरूपेण नागत्वेप्यनुगच्छति ॥२॥
पानंभवतियक्षत्वे. राक्षसत्वेतथाऽमिषम्।
दानवत्वेतथामांसं प्रेतत्वेरुधिरोदकम् ॥३॥
मनुष्यत्वेऽन्नपानादि नानाभोगरसोभवेत् ॥

महाभारत—श्रीदेवल मुनीश्वर के वचन ॥

अर्थात् यदि मनुष्य शुभकर्मानुसार मरकर
देवता बनेगा तो उस को वह श्राद्ध का अन्न अमृत
रूप में-प्राप्त होता है, एवं गन्धर्व जाति में भो-
ग्य रूप से, पशुयोनि में (तृण) घास रूप से, नाग-
योनि में वायुरूप से, यक्षयोनि में मदिरा रूप से,
राक्षसयोनि में-आमिष रूपसे, दानवयोनिमें मांस
रूप से, प्रेतयोनि में रुधिर रूपसे और मनुष्ययोनि
में अन्न पानादि रूपसे वह श्राद्धान्न प्राप्त होता है।
इसलिये हम लोगों का जो सात्विक शुद्ध पवित्र

अन्न घृत–दुग्धादि प्रिय पदार्थ हैं वे ही श्राद्धकर्म में सुपात्र ब्राह्मणों के मार्फत मृतपितरों के निमित्त देना चाहिये इसलिये—शास्त्र में कहा है कि—'यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः,—अर्थात् जिस पुरुषकी जो स्वाभाविक * खुराक है वही देवताओं के प्रति भी अर्पण करे ॥

तात्पर्य यह है कि हम मनुष्यमात्र की शुद्ध सात्विक अन्न, घृत, दुग्ध, फल फूलादि खुराकसे ही श्राद्धादि शुभ कर्मों में पितृ–देवों की पूजा करनी चाहिये और उस हमारे दिये हुए पदार्थों को सूक्ष्म रूप में लेजा कर पितृदेव हमारे पितरोंके प्रति यथादेहानुकूल करके तृप्त करते हैं और हम लोगों को भी आशीर्वाद देकर आनन्द सुखका भागी करते हैं ॥ ॐ तत्सदिति शम् ॥

इति श्री श्राद्धपितृमीमांसायां मृतपितृभ्यो भोजन–प्राप्त्यर्थ शास्त्रोक्त मार्गप्रदर्शने चतुर्थोऽध्यायः ॥

---

* हम मनुष्यमात्रकी स्वाभाविक यही अन्न–घृत–दुग्ध-फल फूलादि सात्विक शुद्ध पवित्र खुराक है। और यह न समझना चाहिये कि–जो मांसाहारी मनुष्य हैं वे मांस वगैरह देवताओंके प्रति अर्पण करें–नहीं नहीं, कदापि नहीं!! हम मनुष्यमात्र की स्वाभाविक खुराक मांस वगैरह कदापि नहीं है देखो मेरा बनाया हुआ "मांसभक्षणनिषेध" नामक ट्रैक्ट कि जिस में खूब विचार पूर्वक यह सिद्ध किया गया है कि मनुष्यमात्र की स्वाभाविक खुराक अन्न है ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

समाजी—श्रीपण्डित जी महाराज ! अब कृपा करके यह बताओ कि पितृलोक इस मनुष्यलोक से भिन्न कोई अन्य लोक है क्या और वह कहां स्थित है ? तथा उस लोक के अधिष्ठातृपितृदेवोंका शरीर कैसा है और उनका राजा कौन है ? तथा हे महाराज ! दयापाल ! यह भी बताइये कि हम मनुष्य मात्र को इन पितृलोक निवासी पितृदेवों के पूजन सत्कार (श्राद्ध–तर्पण) करने की क्या आवश्यकता है ? अर्थात् श्राद्ध तर्पण न करने से क्या कोई दोष वा हानि है ?

सनातनी–महाशय जी ! ये आप के प्रश्न यथार्थ और ठीक २ हैं । अब आप श्रद्धापूर्वक क्रमसे इन प्रश्नों का वेदादि सच्छास्त्रप्रमाणों से एवं प्रबल युक्तियुक्त समाधान श्रवण करो ॥

यथा—प्रथम आप का प्रश्न यह है कि पितृलोक मनुष्यलोक से भिन्न कोई अन्यलोक है और वह कहां है ? सो हे महाशय जी देखो शतपथ ब्रा० वेद में स्पष्टरूप से दिखलाया गया है कि–पितृलोक एक स्वतन्त्र लोक है । जैसे कि—

अथ त्रयोवावलोका मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति । शत० ब्रा० १४ । ३ । २४ ॥

अर्थात् तीन भोग भूमियें हैं–मनुष्यलोक, पि-

तृलोक और देवलोक। इनमें जीव कर्मानुसार प्राप्त होता है। और केवल निषिद्ध कर्मों का कर्त्ता जीव नरक को ही प्राप्त होता है। इससे सिद्ध हुआ कि पितृलोक, मनुष्य और देवलोकों से जुदा एक स्वतन्त्र लोक है। तथा च—

"दक्षिणाप्रवणोवै पितृलोकः" शत० ब्रा० १३। ८।४।१॥

"कर्मणापितृलोकः" वृहदारणयक।

दक्षिण दिशामें पितृलोक है। शुभकर्मा करके पितृलोक में वास होता है। यथा—

तेवाएत आहुतीहुते उतक्रामतस्ते अन्तरिक्षमाविशतस्ते अन्तरिक्षमेवाहवनीयं कुर्वाते इत्यादि॥ शतपथ ब्रा० ११।६।२।६॥

तथा—अथ ये यज्ञेन दानेन तपसालोकं जयन्ति ते धूममभिसमर्चन्ति, धूमाद्रात्रिं रात्रेपक्षीयमाण पक्षमपरपक्षान्यान् षण्मासानदक्षिणादित्य एति मासेभ्यः पितृलोकमित्यादि॥ शतपथ·

अर्थात्—मरण समयमें इस प्राणीकी तीन गति होती हैं, देवलोक पितृलोक, अधोलोक, उसमें पितृलोक का गमन कहते हैं कि—यज्ञ दानादि कर्म करने वाले मनुष्य धूप से रात्रि में कृष्णपक्ष, उस से दक्षिणायन और वहां से पितृलोक को गमन करते हैं। और जो सत्कर्मा नहीं वे कीटादि योनि को प्राप्त होते हैं। इस से स्पष्ट सिद्ध हुआ कि पितृ-

यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले पितृलोकादि उत्तम लोकोंमें जाते हैं। और पितृलोक एक स्वतन्त्र चिरकाल आनन्दप्रद लोक है। यथा—

(स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः०)

तैत्तिरीयोपनिषद् ॥

सो यह पितृलोक (विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति)

[सिद्धान्तशिरोमणौ]

चन्द्रलोक के भी ऊपर है जहां पितरोंका निवास है। तथा—

उदन्वतीद्यौरवमापीलुमतीति मध्यमा। तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितरआसते।

अथर्व वेद कां० १८ अनु० २ मं० ॥ ४८ ॥

इस मन्त्रका सम्पूर्ण भावार्थ आगे द्वितीय अध्याय में स्पष्ट करदिया है वहां ध्यान देकर पढ़ेंगे तो अच्छी तरह ज्ञान होगा कि "प्रद्यौ" नाम वाले आकाश के तीसरे भाग में पितृलोक है जहां पितर देव रहते हैं॥

अब आपका द्वितीय प्रश्न है कि पितृलोक निवासी पितरों का शरीर कैसा होता है और उन्हों का राजा कौन है ?

सो हे महाशय जी ! इन पितृलोक निवासियों का शरीर वायुतत्व प्रधान है। यथा—

आप्यतेजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि । अथर्व० ३।१।२।२८॥

अर्थात्–जलतत्व, तेजतत्व अथवा वायुतत्वप्रधान शरीर बनकर, जीव लोकान्तरों को जाता है। पार्थिवतत्व (पाञ्चभौतिक पृथिवीतत्वप्रधान स्थूल) शरीर से नहीं जाता है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि जीव वायु आदि तत्वप्रधान शरीर धारण करके पितृ आदि लोकान्तरों में जाता है इससे वहां के निवासियों का शरीर अवश्य ही वायु आदि तत्व प्रधान है। अर्थात् वायु कायरूप वे पितर हैं। और वायु इन चर्मचक्षु यानी सांसारिक नेत्रों से देखने में नहीं आता है इसलिये ये पितर वायुतत्वप्रधान सूक्ष्म शरीरधारी होने से हरएक मनुष्य को देखने में नहीं आते हैं इसलिये वेदमें स्पष्ट दरशाया है कि–

तिरइववै पितरो मनुष्येभ्यः०–शतपथ० २।३।४।२१॥

सूक्ष्म होने के कारण वा यथेच्छाचारी होनेके कारण पितर मनुष्यों से अदृश्य छिपे से होते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि जो सूक्ष्म अदृश्य हैं जो सर्व साधारण मनुष्यों के दृष्टिगोचर नहीं होते वे पितर अवश्य ही सूक्ष्म शरीरी वायुकायरूप होने से अदृश्य हैं परन्तु पूर्ण शुद्ध–पूर्ण श्रद्धा भक्तियुक्त, पूर्णधर्मी आस्तिक मनुष्यको वे पितर सा-

क्षात् भी दीख पड़ते हैं और दर्शन * देते हैं। इस लिये उक्त श्रुति में "इव" शब्द कहा है। यही वायुकाय सूक्ष्म देहधारी पितृदेव श्राद्धकर्ममें आवाहन मन्त्रों से [तत् पितृलोकाज्जीवलोकं अभ्यायन्ति] शतपथ ब्रा० ७ कां १३ म० ४ कं० ६ ॥

* एकवार श्रीमर्य्यादापुरुषोत्तम (परमात्मा के पूर्णावतार) श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने वन में पिता श्री दशरथ जीका एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया—यह कथा बड़ी मनोहर है—श्राद्धसमय में श्राद्धभोक्ता मुनियों के देह में श्रीजानकी जी (सीताजी) ने अपने श्वशुर दशरथजीके दर्शन किये।

श्री वाल्मीकीयरामायणे—

मघासुचलितेसूर्य्ये कालेकुतुपकेतथा।
आयाताऋषयस्सर्वे ये रामेण निमन्त्रिताः ॥ १ ॥
तानागतान्मुनीन्दृष्ट्वा वैदेहीजनकात्मजा।
अपासर्पत्ततोदूरे विप्राणां मध्यतःस्थिता ॥ २ ॥
अन्यत्र च गतासाध्वी सन्त्येवाहंत्रपान्विता।
किन्त्वावद्भोजयेविप्रान् सीतामन्वेषयामिकिम् ॥ ३ ॥
गतेषुद्विजमुख्येषु प्रियांरामो ब्रवीदिदम्।
किमर्थंसुभ्रु नष्टासि मुनीन्दृष्ट्वा समागतान् ॥ ४ ॥
एवमुक्तातदाभर्त्रा त्रपयाधोमुखीतथा।
मुञ्चन्तीचाश्रुसङ्घातं राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥
पितातवमयादृष्टो ब्राह्मणाङ्गेषु राघव।
दृष्ट्वात्रपान्वितावाहमपक्रान्तातवान्तिकात् ॥ ६ ॥
याहंराज्ञापुरादृष्टा सर्वालङ्कारभूषिता।
सा स्वेदमलदिग्धाङ्गी कथं पश्यामि भूमिपम् ॥ ७ ॥
स्वहस्तेन कथं राज्ञे वानेयं भोजनं त्विदम्।
दासानामपियद्दासा नोपभुञ्जन्ति कर्हिचित् ॥ ८ ॥

पितृलोक से जीवलोक अर्थात् मनुष्यलोक में आते हैं। इसलिये वेदमें आज्ञा है कि—

भावार्थ—कुतुपकाल (अपराह्ण) में जब श्रीरामचन्द्र जी श्राद्ध करने लगे तो जिन २ ऋषियों को निमन्त्रण दे आये थे वह सब मुनिमण्डली आगयी, उन्हें आता हुआ देखकर जानकी जी उठकर भागगई और दूर जाकर लता पताओं में अपने को छिपालिया। तब श्रीरघुनाथ जी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि आज जानकी जीने मुनियों से क्यों परदा किया। अब मुझे क्या कर्त्तव्य है, जानकीको ढूंढूं या मुनियोंको भोजन कराऊं। अन्त में यही स्थिर किया कि श्राद्धकाल का लोप न होवे। पिण्डदान करके ब्रह्मभोज पूर्ण किया—आशीर्वाद देती हुई सब ऋषिमण्डली चलीगई। उन सब के विदा होते ही जानकी जी आगयीं, तब श्रीरामचन्द्र जी कहने लगे कि हे प्रिये! तुम कहां गई थीं तुमने ऋषियोंका बड़ा अनादर किया और न उनको प्रणाम किया इतना सुनकर लज्जायमान जानकी नीचेको मुखकर रोती हुई बोली कि हे नाथ! ब्राह्मणोके अङ्गमेंमहाराज श्री दशरथजीको देखकर मैं लज्जावश हो लताओमें जा छिपी क्योंकि जिन श्वसुर जी ने सर्व अलंकारों से भूषित मुझे देखा था आज उन के सामने जटा और वल्कल धारण करे कैसे इस वेष को दिखाऊंगी इसी से उस समय छिप जाना ही उत्तम था। दूसरा—यह (वानेय) वनका भोजन अपने हाथ से कैसे परोसूंगी—जिन महाराजको पूर्व षट्रस परोसती थी

इस कथासे सिद्ध होता है कि श्राद्धभोक्ता ब्राह्मणोके साथ पितर सूक्ष्मरूप में आते हैं और श्रीसती जानकी जी जैसी पूर्ण पतिव्रतायें या पूर्ण धर्मात्मा मनुष्य ही उन पितरोके दर्शन पा सकते हैं॥

उभे दिशावन्तरे विदधाति प्राचीं च दक्षिणां चैतस्यांॅह दिशि पितृलोकस्य द्वारं द्वारैवैनं पितृलोकं प्रपादयति ॥ शतपथ० ब्रा० १३।४।४।५॥

ग्राम नगरादि से पूर्व और दक्षिण दिशा के बीच आग्नेयकोण में चतुष्कोण वेदी (श्मशान मन्दिर) बनावे, क्योंकि इसी आग्नेय दिशामें पितृलोक का द्वार है। ऐसा श्मशान बनाने वाले अपने मृतक को द्वार के मार्ग से पितृलोक को पहुंचाते हैं॥

इत्यादि से स्पष्ट विदित हुआ कि पितृलोक एक स्वतन्त्र लोक है और वह दक्षिण में है—उनका द्वार आग्नेयकोण में से है। वहां अत्यन्त पुण्यवान् जीव जा सकते हैं तथा उन के निवासी पितृदेवोंका शरीर वायुकाय रूप सूक्ष्म है। पूर्णधर्मात्मा—श्रद्धायुक्त सत्यवादी मनुष्योंको ही उन पितृदेवोंका दर्शन होता है। और वे ही वेदके आवाहन मन्त्रों से निमन्त्रित ब्राह्मणों के शरीर में अदृश्य रूप से यहां श्राद्धकर्ममें आते हैं। परन्तु दिव्य चक्षु वाले ही उनका दर्शन कर सकते हैं। इति॥

हे महाशय जी! अब आप यह भी सुनो कि उन पितृदेवों का राजा (स्वामी—अधिष्ठाता) कौन है ? ॥ यथा—

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये० । यजुर्वेद वाजसनेय अ० १९ मं० ४५॥

पितृलोक का राजा यमराज है। अर्थात् जो जाति तथा रूपादि करके तुल्य एकसे अन्तःकरणों वाले पितर यम देवता के राज्यमें रहते हैं। तथा-

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम्। वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत॥

अथर्व० कां० १८। अनु० ३ मं० १३॥

अर्थ—सृष्टि के आरम्भ में जो मनुष्यों के बीच सबसे पहिले मरता है, और मरणानन्तर जो इस पितृलोक में पहिले जाता है पीछे अन्य मनुष्य मर२ के जिस के अधिकार में जाया करते हैं इस कारण वह जनों का "संगमन" कहाता है [सम्यग्गच्छन्ति जना यस्मिन् यत्सन्निधौ स सङ्गमनस्तम्] उस विवस्वान् के पुत्र "यमराज" का हे मनुष्यो ! हविर् यज्ञ द्वारा पूजन करो। जैसे पितर सनातन हैं अर्थात् मनुष्योंके समान थोड़े २ कालमें उन का जन्म मरण नहीं होता वैसे पितरों का वा मरकर पुण्यकर्मों से पितृलोक में जाने वालों का राजा यम भी पितृलोकमें जाने पश्चात् अस्मदादि की अपेक्षा सनातन कहाते हैं। कभी जिन का नाश न हो ऐसे तो वायु आदि सूक्ष्म तत्व भी नहीं हैं क्योंकि प्रलय के

समय वे भी नहीं रहते इस से सापेक्ष नित्य वा सनातन सूक्ष्मतत्वों के तुल्य पितर भी हैं। जैसे मनुष्य का शरीर पृथिवी तत्वप्रधान है और स्थूल है वैसे पितृलोक के राजा यम का और पितरों का शरीर वायुतत्वप्रधान सूक्ष्म है। जैसे मनुष्यदेहोंका अधिष्ठाता एक २ जीवात्मा होता है वैसे पितृदेहोंके साथ भी एक २ अधिष्ठाता जीव है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि पितृलोक का राजा, यमराज है। उक्तञ्च—

अपेमंजीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परिग्रामादितः। मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार ॥

अथर्व० का० १८। २। २७॥

भा०—हे जीवाजीवित जना इमं मृतं देहं गृहेभ्यः पृथगपारुधन् निस्सारयत तमितो ग्रामात्परि—बहिर्निर्वहत नयत। प्रचेताः प्रकृष्टबुद्धिर्मृत्युर्यमस्य दूत आसीदस्ति समृतस्यासून् पितृभ्यः पितृभावाय गमयाञ्चकार गमयति वर्त्तमाने लड्लिटौ॥

भावार्थः०—हे जीवित पुरुषो ! इस मरेहुए मुर्दा शरीर को घरोंसे बाहर निकालो और उस को इस

ग्राम से बाहर ले जाओ। यमराज का दूत बड़ा बुद्धिमान् मृत्यु नामक है जो मरे हुओं के प्राणों को पितर बनने के लिये यमलोक अर्थात् पितृलोक में पहुंचाता है। तथा—

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्। तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयति ॥

अथर्व० कां० १८। अनु० ३। मं० ५९॥

अर्थ—जो हमारे पिता के पितर पितामहादि (दादे वगैरह) तथा प्रपितामहादि कि जो मरणानन्तर महान् अन्तरिक्ष लोकमें प्रवेश करचुके हैं उन हमारे पितरों के लिये, प्राणों का ले जाने वाला स्वतन्त्र राजा यम कर्मानुसार उत्तम शरीर देवे। इत्यादि वेदमन्त्रों से निःसन्देह सिद्ध हुआ कि पितृलोक का राजा श्रीयमराज है और वही मनुष्यादि प्राणीमात्र को (मरणानन्तर उत्तम—निकृष्ट कर्मानुसार) यथायोग्य शरीर देकर सुख दुःखादि भुगाता है। इति॥

हे महाशय जी ! अब आप के उस संशय का भी समाधान किया जाता है जो कि पितृलोकनिवासी पितरों के पूजन सत्कार (श्राद्ध—तर्पण) क-

रने की क्या आवश्यकता है और न करने से क्या हानि वा दोष है।

समाधान-प्रजापतिं वै भूतान्युपासीदन् प्रजा वै भूतानि विनोधेहि यथा जीवामेति। ततो देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदं स्तानब्रवीद् यज्ञो वोऽन्नममृतत्वं व ऊर्क् सूर्य्यो वो ज्योतिरिति ॥१॥ अथैनं पितरः प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्योपासीदंस्तानब्रवीद् मासि मासि वोऽशनं स्वधा वो मनोजवश्चन्द्रमा वो ज्योतिरिति ॥२॥ अथैनं मनुष्याः प्रावृता उपस्थं कृत्वोपासीदंस्तानब्रवीत् सायं प्रातर्वोऽशनं प्रजावो मृत्युरग्निर्वो ज्योतिरिति ॥३॥

यजु० शत० का० २ प्र० ३ ब्रा० ४॥

भाषा भावार्थः-सृष्टिके आरम्भ में देवता तथा पितर और मनुष्य ये तीन प्रकार के भूत (जिस प्रकार से हमारा जीवन-सत्कार-पूजन हो सो प्रकार हमारा विधान करें) इस कथन के अभिप्राय से प्रजापति (ब्रह्मा) के समीप गये, वहां प्रथम देवताओं ने यज्ञोपवीत को धारण कर दक्षिणजानु का भूमि पर पात कर ब्रह्माजीके सन्मुख उपस्थित होकर जीविका एवं सन्मान होने की याचना की तब प्रजापतिने यह कहा कि यज्ञ आप का अन्न है अमृत आपका ऊर्क् (वीर्यमद) है और सूर्य आप के लिये प्रकाश है ॥ १ ॥

फिर पश्चात्–प्राचीनावीति (अपसव्य यानी यज्ञोपवीत बायें तरफ करते) हुए बांया (जानु) घोंटू पृथ्वी पर नवाय कर पितर लोग उपस्थित हुए, तब उन पितरों के प्रति प्रजापतिने यह कहा कि महीने २ भरमें १ *एकवार अमावास्याके दिन आप का भोजन होगा। तुम्हारे लिये कर्मकाण्डमें "स्वधा" शब्द बोला जायगा। वह स्वधा पदवाच्य वस्तु तुम्हारे लिये मनके तुल्य वेग वाला होगा। और चन्द्रमा तुम्हारा ज्योति अर्थात् तुमको प्रकाश पहुंचाने वाला होगा ॥ २ ॥

फिर प्रावृत "निवीतं कण्ठलम्बितम्" (अ-

* यह भी ध्यान में रहे कि मनुष्यके एक महीनेका समय पितरों का एक दिन-रात सब शास्त्रोंमें माना गया है। इस लिये कृष्णपक्षरूप रात्रि की समाप्ति में प्रातः काल अमावास्या को पितरोंको अपने दिन के हिसाब से नित्य भोजन मिला और मानुष दिन के हिसाब से महीने २ में भोजन मिलना कहा गया है तथा उक्त कथन से यह भी आया कि अपसव्य रहने वाले एवं बांया घोंटू टेक के बैठने वाले और महीने २ में अमावास्या को एकवार भोजन करने वाले तथा चन्द्रमा जिन का ज्योति है वे पितर हैं। वा जिनका नाम पितर है वे उक्त प्रकार से अपसव्यादि रहने वाले हैं। मनुष्य प्रति दिन भोजन करते हैं और पितर महीने २ में एकवार अमावास्या को भोजन करते हैं। इस कारण पितर मनुष्य नहीं अर्थात् मनुष्यों से पृथक् हैं। इस से भी स्थूल देह धारी जीवित पितरों का स्पष्ट खण्डन है ॥

र्थात् गलेमें मालाकी तरह यज्ञोपवीत पहिने) हुए दोनों (जानुओं) घोंटुओंको भूमि पर नवाय कर मनुष्य उपस्थित हुए, तब उन से प्रजापति ने यह कहा कि सायं और प्रातःकाल आपका भोजन होगा और पुत्र-पौत्रादि प्रजा आप लोगों का मृत्यु है और अग्नि आपकी ज्योति यानी प्रकाश है ॥ ३॥

इत्यादि वेद की श्रुतियों में स्पष्ट आज्ञा दिखायी वा कही गयी है कि हर एक वैदिकधर्मावलम्बी मनुष्यमात्रका यह अवश्य कर्त्तव्य है कि ब्रह्मा जी द्वारा नियत किये यज्ञों से देवताओं का, तथा प्रत्येक महीनेकी अमावास्या में पितृयज्ञ (श्राद्ध) द्वारा पितरों का पूजन-सत्कार करें जिससे कि वे देवता और पितर अपने अभीष्ट (यानी मुकर्रिर) पूजन सत्कारको ग्रहण करके सन्तुष्ट होकर ब्रह्माज्ञाकारी मनुष्योंके प्रति सन्तान-धन-धान्य समृद्धि आदि सुख देकर तथा उन्हीं के मृतपितरों की भी सद्गति करें वा करते रहें । और जो मनुष्य वेद तथा श्री ब्रह्माजीकी आज्ञा उल्लंघन करके वेदोक्त देव-पितृ यज्ञादि कर्म नहीं करता वह ब्रह्माज्ञा विरोधी होकर वेदमार्ग से भ्रष्ट होकर अनादर और दुःखको प्राप्त होता है और उन देव पितरोंके कोपद्वारा वह मनुष्य अनर्थ और दोषका भागी होता है । तथा और भी स्पष्टरूप से वेद में दिखलाया गया है कि—

एष * पन्था एतत्कर्मैतद् ब्रह्म तत् सत्यं तस्मान्न प्रमाद्येत् तस्मान्न प्रमाद्येत्तन्नातीयाद् न ह्यत्यायन् पूर्वे येऽत्यायंस्ते पराबभूवुः तदुक्त मृषिणा—"प्रजा ह तिस्रोऽत्यायमीयुर्न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे, बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आविवेश" इति, "प्रजा ह तिस्रोऽत्यायमीयुरिति" या वै ता इमाः प्रजास्तिस्रोऽत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि वङ्गावगधाश्चेरपादाः, 'न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे, इति, ता इमाः प्रजा अर्कमभितो निवि-

* एतच्छब्दः सन्निहितार्थपरामर्शकः, सन्निहितश्चार्थो ऽतीत आगामीचेत्येव द्विविधः, तथा च (एष); उभयविधोप्यर्थः (पन्थाः) पुरुषार्थस्य मार्गः, साधनमितियावत्, तदुभयं विस्पष्ट निर्दिश्यते (एतत्कर्म एतद्ब्रह्म) अग्निमील इत्यारभ्य, अह्नोरूपम् इत्यन्तेनातीत सन्निहितग्रन्थेन प्रतिपादित यत्कर्म तथा उत्कम्-इत्यारभ्य आचार्य इत्यन्तेन सन्निहितेनारण्यक द्वय रूपेणोत्तर ग्रथेन निरूपित यत्सगुणं निर्गुणं च ब्रह्म एतदुभयमपि पुरुषार्थ साधनं, व्यवहार परमार्थ भेदेनोभयमपिसत्यम्, अत्रकर्मशब्देन तज्ज्ञानपूर्वकमनुष्ठानं ब्रह्मशब्देन च तद्विषयं ज्ञानमात्र गृह्यते, यथोक्तस्योभयविधस्य मार्गत्व द्रढयितुमयोगव्यावृत्तिमन्ययोगव्यावृत्ति च विधत्ते (तस्मान्न प्रमाद्येत) कर्मानुष्ठानब्रह्मज्ञानयोरसपादनं प्रमादः, तथा सपादयितु प्रवृत्तेनाऽप्यालस्यादिना तत्परित्यागोऽपि प्रमादः, एतदुभय न कुर्याद् इति-।

ष्टा इममेवाग्निं, बृहद्द ह तस्थौ भुवनेष्वन्त: इति, अद उ एव बृहद्द भुवनेष्वन्तरसावादित्य: पवमानो हरित आविवेश, इति, वायुरेव पवमानो दिशो हरित आविष्ट:" ॥

ऋग्वेद–ऐतरेयारण्यक २ अ० १ खं० १ ॥

भाषार्थ:–(एतत्कर्म–एतद्ब्रह्म) यह जो पूर्वोत्तर ग्रन्थसे देव–पितृयज्ञादि कर्म और ब्रह्मका निरूपण किया है (एष पन्था:) यही पुरुषार्थका मार्ग है अर्थात् भोग मोक्षका देनेवाला है (एतत् सत्यम्) यही वेदोक्त कर्म तथा ब्रह्मज्ञान अवश्य फल देनेसे सत्य है। और अन्य जो अवैदिक अनुष्ठान हैं वह अनर्थ पर्यवसायी होनेसे मिथ्या हैं (तस्मान्न प्रमाद्येत्) तिस आम्नायमार्गसे प्रमाद न करे और (तन्नातीयाद्) तिस मार्ग का अतिक्रमण भी न करे किन्तु आलस्य तथा अन्य कुमार्गोंको त्यागकर इसी का ही अनुसरण करे; इसीसे ही (नह्यत्यायन् पूर्वे) जो पूर्व मनु–वसिष्ठ आदि महापुरुष हुए हैं वह इस मार्गका अतिक्रमण यानी उल्लंघन नहीं करते रहे और (येऽत्यायन्) जो नास्तिक लोग इस वेदोक्त मार्गका उल्लंघन करते रहे (ते परा बभूवु:) वह पुरुषार्थसे भ्रष्ट हुए निरादरको प्राप्त हुए हैं ॥

इस ब्राह्मणोक्त अर्थकी दृढ़ताके लिये मन्त्रका प्रमाण देते हैं कि(तदुक्तमृषिणा) इति, अब इस मन्त्र का स्वयं ही ब्राह्मण व्याख्यान करता है कि प्रजा (प्रजा ह तिस्रोऽत्यायमीयु: इति, यावै ता

इमाः प्रजास्तिस्रोऽत्यायमायन् तानीमानि वयांसि वङ्गा अवगधाश्चेरपादाः) अर्थात् ब्राह्मणादि भेदसे जो अनेक प्रकारकी प्रजा हैं उनमेंसे तीन भाग जो प्रजा हैं वह वैदिक कर्मके उल्लंघन करने वाली हैं और एकभाग प्रजा वैदिककर्ममें निष्ठावाली है। वहां जिन प्रजाओंने वैदिककर्म का त्याग किया है उन प्रजाओंकी गति कहते हैं-(तानीमानि वयांसि) अर्थात् जिन्होंने श्रौत यानी देव-पितृ यज्ञादि कर्म का त्याग किया है उनमेंसे एकभाग तो काक आदि पक्षि योनियोंको प्राप्त होते हैं जो कि आकाश में विचरने वाले हैं और एक भाग वङ्ग * (वृक्ष) और अवगध (ओषधियें वा वनस्पतियें) हैं और एक भाग ईरपाद हैं अर्थात् पृथिवी के बिलमें निवास करने वाले पादोदर (सर्प) आदि हैं, अर्थात् जिन २ लोगोंने पूर्वोक्त श्रौतमार्गका त्याग किया है वह मर कर नरक भोग के अनन्तर पशुपक्षादि-कीट स्थावर आदि अनेक तिर्य्यग् योनियों को प्राप्त होते हैं।

इस-प्रकार वैदिकमार्गके उल्लंघन करने वाली तीन प्रकारकी प्रजाकी व्यवस्था कहकर अब एकभाग वाली जो आस्तिक प्रजा है उस की गति कहते हैं कि "न्यन्याअर्कमभितो विविश्रे" इति।

---

* (वङ्गाः) वनगता वृक्षाः, अवगधाः-अवन्ति-रक्षन्ति मनुष्यादीन् इति अवाः, गध्यन्ते-अभिकाङ्क्ष्यन्ते जनैरिति गधा. वनस्पतिरूपा व्रीहि-यवादि रूपा ओषधय, इत्यर्थः॥

इसीका विवरण करते हैं (ता इमाः प्रजा अर्कमभितो निविष्टा इममेवाग्निम्) इति, अर्थात् आस्तिक प्रजामेंसे कोई एक तो आहवनीय रूप (अर्क) अर्चनीय जो अग्नि है उसकी उपासना करते हैं और कोई एक (बृहद् ह तस्थौ भुवनेष्वन्तः) इसीका विवरण कहते हैं कि (अद उ एव बृहद् भुवनेष्वन्त रसावादित्यः) इति, अर्थात् यह जो ब्रह्माण्डमें व्यापक तेजोमय मार्त्तण्ड—(सूर्य) है उसकी उपासना करते हैं। और कोई एक [पवमानो हरित आविवेश] इसका विवरण कहते हैं कि (वायुरेव पवमानो दिशो हरित आविष्ट) इति, अर्थात् निखिल दिशा में संचारी जो पवित्र रूप वहन शील वायु हैं तिसकी उपासना करते हैं, अर्थात् समष्टि वायु रूप हिरण्य गर्भ की उपासना करते हैं ॥

तात्पर्य यह है कि आस्तिक लोग अग्नि आदि की उपासना द्वारा सद्गति को प्राप्त होते हैं और नास्तिक लोग पक्षि आदि रूप अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥

तथा मनु भगवान् एवं योगी श्री याज्ञवल्क्य मुनि ने भी—

अकुर्वन्विहितंकर्म निन्दितंचसमाचरन् ।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयतेनरः ॥
मनु० अध्या० ११ । ४४ ॥

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्यचसेवनात्।

अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरःपतनमृच्छति ॥

याज्ञ० अ० ३ । २१९ ॥

अर्थात्—विहित (यानी वेदोक्त देव—पितृयज्ञादि) कर्मके न करने से और निषिद्ध कर्मोंके करने से तथा विषयोंमें अति आसक्त होनेसे पुरुष प्रायश्चित्त का भागी होता है। एवं याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि—विहित कर्म के न अनुष्ठानसे और निन्दित (परस्त्रीगमनादि) के सेवनसे तथा इन्द्रियोंको न रोकनेसे पुरुष पापको प्राप्त होता है ॥

इत्यादि वेद—स्मृतिशास्त्रोंके प्रमाणोंसे निस्सन्देह सिद्ध होता है कि मनुष्यमात्र, वेदादिशास्त्रोक्त श्रौत—स्मार्त्त कर्मों के सेवन न करने से पतित होकर अधोगतिको प्राप्त होता है । इसलिये हरएक वेदमतानुयायी आस्तिक जनका यह अतीव मुख्य और अवश्य करने योग्य कर्त्तव्य है कि वह निरालस्य होकर विना शक ठीक २ शास्त्रदर्शित विधिसे देश-काल पात्रका विचार करके श्राद्धादि (देवपितृयज्ञ) करके अपना जीवन सफल करे । और उपरोक्त कर्मकाण्ड का त्याग करने से निःसन्देह दोष एवं अत्यन्त हानि होती है ॥ इत्यलम् विद्वत्सु—

इति श्री श्राद्धपितृमीमांसायां पितृलोकस्थितिस्तस्याऽधिष्ठातृपितृदेवानां स्वरूपवर्णने चैवं तत्कर्माऽनुष्ठानस्याऽत्यावश्यकता प्रदर्शने समाप्तोऽयं पञ्चमोऽध्यायः

ॐ—सच्चिदानन्देश्वराय नमः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

समाजी—श्रीपण्डित जो महाराज ! अब कृपा करके यह भी तो सुनाओ कि श्राद्धमें केवल ब्राह्मणोंको ही निमन्त्रण देकर भोजन करानेकी क्या आवश्यकता है ? क्यों नहीं उन हमारे मित्र (दोस्त) वा अन्य किसी गरीब अनाथ अथवा अब -नवीन आर्य्य हुए [मुसल्मीन, अब्दुलगफूर वगैरह जिन्हों का आर्य नाम धर्मपालादि रक्खे गये हैं उन] महाशयोंको अपने पितरोंके निमित्त श्राद्धमें भोजन करावें ? क्या केवल ब्राह्मणोंकोही इसके लिये किसी महाराजासे इकरारनामा लिखा मिला है वा कोई इनको किसीने सार्टीफिकेट लिखदिया है ?

सनातनी—महाशय जी ? घबराओ मत, थोड़ा धैर्य धारण करो और ध्यान लगाकर सुनो कि ब्राह्मणों के लिये श्रीमहाराजाधिराज महर्षि श्रीमनु भगवान् ने क्याही सुन्दर सार्टीफिकेट रूप में पक्का इकरारनामा लिखदिया है कि जो सब वेदमतानुयायी आस्तिक हिन्दुओंको परम माननीय है ॥

यथा—मनुस्मृ० अध्याय १ श्लोक ९२ से १०१ तक

ऊर्ध्वंनाभेर्मेध्यतरः पुरुषपरिकीर्तितः ।
तस्मान्मेध्यतमं त्वस्यमुखमुक्तंस्वयंभुवा ॥९२॥

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद् ब्राह्मणश्चैवधारणात्।
सर्वस्यैवास्यसर्गस्य धर्मतोब्राह्मणःप्रभुः ॥९३॥
तंहिस्वयंभूःस्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत् ।
हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्यचगुप्तये ॥९४॥
यस्यास्येनसदाश्नन्ति हव्यानित्रिदिवौकसः ।
कव्यानिचैवपितरः किंभूतमधिकंततः ॥ ९५ ॥
भूतानांप्राणिनःश्रेष्ठाः प्राणिनांबुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सुनराःश्रेष्ठा नरेषुब्राह्मणाःस्मृताः ॥९६॥
ब्राह्मणेषुचविद्वांसो विद्वत्सुकृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषुकर्त्तारः कर्तृषुब्रह्मवेदिनः ॥ ९७ ॥
उत्पत्तिरेवविप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मस्यशाश्वती ।
सहिधर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ९८ ॥
ब्राह्मणोजायमानोहि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरःसर्वभूतानां धर्मकोशस्यगुप्तये ॥ ९९ ॥
सर्वस्वंब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ।
श्रेष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वंवैब्राह्मणोऽर्हति ॥१००॥
स्वमेवब्राह्मणोभुङ्क्ते स्वंवस्तेस्वंददातिच ।
आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जतेहीतरेजनाः ॥१०१॥

अर्थात्—श्री ब्रह्माजीने पुरुषोंको नाभिसे ऊपर के भागमें अधिक पवित्र कहा है । और इसके मुख को तो उससे भी पवित्र कहा है ॥ ८२ ॥ ब्राह्मण सब अंगों में उत्तम परमात्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है, क्षत्रियादि तीनोसे पहिले जन्मा है और वेदको मु-

साग्र रखता है—इस कारण ब्राह्मण धर्म का उपदेश करनेमें इस सब सृष्टिका गुरु (शासक) है ॥ ९३ ॥ स्वयम्भू ब्रह्माने तप करके देवताओंको 'हव्य, और पितरोंको 'कव्य, पहुंचानेके लिये तथा इस सब जगत्की [यज्ञादिके द्वारा वर्षा आदिसे] रक्षा करने के लिये आरम्भमें अपने मुखसे ब्राह्मणोंको रचा है ॥ ९४ ॥ जिसके मुखसे देवता हव्योंको और पितर कव्योंको सदा खाते हैं, तिससे बढ़कर कौनसा प्राणी हो सकता है ? ॥ ९५ ॥ पृथिव्यादि पञ्चभूतोंसे बनाये स्थावर जंगम सब प्राणियोंमें कीट पतंगादि प्राणी श्रेष्ठ हैं कदाचित् किञ्चित् सुखलेश के प्राप्त होने से और उनसे (बुद्धिजीवी) सार्थ निरर्थक स्थानमें जाने न जाने वाले पशु आदि श्रेष्ठ हैं—उनसे प्रकृष्ट ज्ञान के सम्बन्धसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं—उनसे भी सर्वपूज्य और मोक्षाधिकारके योग्य होनेसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ॥ ९६ ॥ ब्राह्मणोंमें भी स्वर्गादि फल देनेवाले ज्योतिष्टोमादि कर्मकाण्डके विद्वान् अधिकारी श्रेष्ठ हैं—उनसे अनागत के लिये प्रथम सत्कर्म करने वाले श्रेष्ठ हैं—उन से भी हिताहित प्राप्ति परिहार भागी होनेसे (कर्त्ता) अनुष्ठाता श्रेष्ठ हैं—उन से भी मोक्षफलके लाभयोग्य होनेसे ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते हैं ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणका देह जन्म मात्रसे ही अविनाशी धर्मकी मूर्त्ति है जिस से वह धर्मके लिये उत्पन्न हुआ है । धर्मानुगृहीत आत्मज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति के लिये योग्य है ॥ ९८ ॥

जिससे ब्राह्मण उत्पन्न होता हुआही पृथिवीमें (अधि) ऊंचा और श्रेष्ठ है। सर्व धर्मोंको ब्राह्मणद्वारा उपदेश किये जानेसे तथा सब जीवोंके धर्मके समूह की रक्षाके लिये समर्थ है ॥ ९९ ॥ जो कुछ पृथिवी में धनादि पदार्थ हैं वह सब ब्राह्मणका अपना स्वत्व है यह बात ब्राह्मणकी स्तुतिके लिये कही है—तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण के अपने स्वत्व के तुल्य है इस से ब्राह्मण ब्रह्माजीके मुख से उत्पन्न होने, और वंश से श्रेष्ठ होनेसे सर्व पदार्थों और द्रव्योंके ग्रहणके योग्य है ॥ १०० ॥ ब्राह्मण जो दूसरेका भी अन्न भक्षण करता है सो अपना ही करता है, दूसरे का जो वस्त्र पहरता है और जो दूसरेका पदार्थ लेकर औरके अर्थ देता है वह भी ब्राह्मणका अपना ही पदार्थ है ऐसा होनेसे ब्राह्मणकी कृपा ही से और सब लोग भोजनादि करते भोगते हैं ॥ १०१ ॥

इत्यादि श्री महाराजाऽधिराज महर्षि श्रीमनु भगवान्ने ब्राह्मणोंकी प्रशंसा करते हुए देवता और पितरोंको यज्ञ में "हव्य" अन्न और श्राद्ध "कव्य" अन्न पहुंचाने के लिये तथा वेद प्रतिपादित धर्म का सत्योपदेश करने के लिये इस पृथ्वी पर ब्राह्मणों को ही मुख्य भूदेव ठहराकर सार्टीफिकेटरूप इकरारनामा लिखदिया है इसी कारण यज्ञ और श्राद्धादिमें ब्राह्मणोंके प्रति आदर सत्कार पूर्वक निमन्त्रण देकर भोजनादि दान देने की अत्यन्त आवश्यकता

है। इसलिये प्रथम भूदेव ब्राह्मणोंका पूजन सत्कार करके पीछे यथाशक्ति अनुसार भले ही अपने मित्र वा अन्य किसी अनाथादिका भोजनसे सत्कार करना चाहे तो करे यही वेदादि धर्मशास्त्रोंका मुख्य, सिद्धान्त है ॥

समाजी–श्रीपण्डित जी महाराज ! यह तो ठीक सार्टीफिकेट रूप अच्छा माननीय इकरारनामा सुनाया परन्तु इसमें मुझे औरभी बड़ा सन्देह हुआ, है कि श्राद्धादि शुभकर्मों में सुपात्र, विद्वान् तथा योग्य ब्राह्मणको ठीक २ देखकर निमन्त्रण देना चाहिये कि नहीं; चाहे वो कैसा भी हो ? अर्थात् मद्य मांसाहारी–व्यभिचारी–निन्दित आचरण वाले मूर्ख को भी केवल उस के नाम मात्र ब्राह्मण होने से दिया जाय ? ॥

सनातनी–महाशयजी ! यह आपका सन्देह बहुत सत्य अच्छे साररूप निर्णय कराने वाला है। परन्तु आप निष्पक्षपाती हो कर समयको विचार करके श्राद्धमें अधिकारी और अनधिकारी ब्राह्मणों को सुनो। यथा मनु० अध्याय ३ में–

श्रोत्रियायैवदेयानि हव्यकव्यानिदातृभिः।
अर्हत्तमायविप्राय तस्मैदत्त महाफलम् ॥१२८॥
एकैकमपिविद्वांस दैवेपित्र्ये च भोजयेत्।
पुष्कलंफलमाप्नोति नामन्त्रज्ञान्बहूनपि ॥१२९॥

दूरादेवपरिक्षेत ब्राह्मणंवेदपारगम् ।
तीर्थंतत्हव्यकव्यानां प्रदानेसोऽतिथिःस्मृतः ॥१३०॥
सहस्रंहिसहस्राणामनृचां यत्रभुञ्जते ।
एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हतिधर्मतः ॥१३१॥
ज्ञानोत्कृष्टायदेयानि कव्यानिचहवींषिच ।
नहिहस्तावसृग्दिग्धो रुधिरेणैव शुद्धयतः ॥१३२॥
यावतोग्रसतेग्रासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतोग्रसतेप्रेत्य दीप्तशूलष्टर्ययोगुणान् ॥१३३॥
नश्राद्धेभोजयेन्मित्रं धनैःकार्योऽस्यसंग्रहः ।
नारिंनमित्रंयंविद्यात्तंश्राद्धेभोजयेद्द्विजम् ॥१३८॥
सम्भोजनीसाभिहिता पैशाचीदक्षिणाद्विजैः ।
इहैवास्तेतुसालोके गौरन्धेवैकवेश्मनि ॥१४१॥
यथेरिणेवीजमुप्त्वा न वप्तालभतेफलम् ॥
तथाऽनृचेहविर्दत्वा नदातालभतेफलम् ॥१४२॥
दातॄन्प्रतिग्रहीतॄंश्च कुरुतेफलभागिनः ।
विदुषेदक्षिणांदत्त्वा विधिवत्प्रेत्यचेहच ॥१४३॥
यत्नेनभोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचंवेदपारगम् ।
शाखान्तगमथाध्वर्युं छान्दोगन्तुसमाप्तिकम्॥१४५॥
एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः ।
पितॄणांतस्यतृप्तिःस्याच्छाश्वतीसाप्तपौरुषी ॥१४६॥
नब्राह्मणंपरिक्षेत दैवेकर्मणि धर्मवित् ।
पित्र्येकर्मणितुप्राप्ते परिक्षेतप्रयत्नतः ॥१४९ ॥

येस्तेनपतितक्लीवा येचनास्तिकवृत्तयः ।
तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥१५०॥
जटिलंचाऽनधीयानं दुर्वलंकितवंतथा ।
याजयन्तिचयेपूगां-स्तांश्चश्राद्धेनभोजयेत् ॥१५१॥
चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा ।
विपणेनचजीवन्तोवर्ज्याःस्युर्हव्यकव्ययोः ॥१५२॥
ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाऽग्निरिवंशाम्यति ।
तस्मैहव्यंनदातव्यं नहिभस्मनिहूयते ॥१६८॥

इत्यादि संक्षेपतया ॥

दाताओंको चाहिये कि वेदपाठी सदाचरण ब्राह्मणको ही देव-पितृकर्ममें अन्न आदि दें, क्योंकि-ऐसेको दिया हुआ दान महाफल देता है ॥१२८॥ देव कर्म (यज्ञ) और पितृकर्म (श्राद्धमें) में एक २ विद्वान् ब्राह्मण को भी जिमादेय तो बहुत फल पाता है और वेदमन्त्र न जानने वाले बहुतसे ब्राह्मणोंको भी भोजन करानेसे वह फल नहीं होता ॥१२९ वेद में पारंगत ब्राह्मणकी दूरसे ही (अर्थात् पिता-पितामह आदि भी कैसे श्रेष्ठ गुणीथे इस प्रकार) परीक्षा करे, क्योंकि-वह ब्राह्मण हव्य कव्य देने का तीर्थरूप होता है और उसको दान देनेमें अतिथि के पूजनके समान फल प्राप्त होता है ॥ १३०॥ जहां वेदको न जानने वाले दशलाख ब्राह्मण भोजन करते हों वहां उन सबके भोजनका फल, भोजन करने

से प्रसन्न हुआ एक ही वेदवेत्ता ब्राह्मण धर्मानुसार दे सकता है ॥१३१॥ पितरोंके निमित्त दियेजाने वाले बलिरूप "कव्य" और देवता और देवताओं को दिये जाते हुए बलिरूप "हव्य" ज्ञानसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको देय, मूर्खों को न देय, क्योंकि—रुधिरसे सने हुए हाथ रुधिरसे ही शुद्ध नहीं होते ॥१३२॥ वेदमंत्र हीन ब्राह्मण देवकर्म और पितृकर्म में जितने ग्रासों को निगलता है उतने ही धंधकते हुए लोहेके शूल ऋष्टि और गोले यजमानको निगलने पड़ते हैं १३३ ॥ श्राद्ध में मित्र [दोस्त को न जिमावे, मित्रोंका संग्रह धनसे करे, जिसको न अपना मित्र समझता हो न शत्रु समझता हो उस ब्राह्मणको ही श्राद्धमें जिमावे ॥ १३८ ॥

जो पुरुष श्राद्धकर्ममें मित्रमण्डलको इकट्ठा करके भोजन कराता है वह पैशाची दक्षिणा कहाती है और यह दक्षिणा (भोजन दान आदि) [जैसे अन्धी गौ एक घरमें हो रहती है उसमेंसे बाहर नहीं निकल सकती तैसे] इस लोकमें ही रहती है और उससे परलोकमें पितरों का कुछ उपकार नहीं होता है ॥ १४१ ॥ जैसे ऊषर (कलरवाली) भूमिमें बीज बोकर बोनेवाला फल नहीं पाता है तैसेही वेदमन्त्र न जानने वाले ब्राह्मण को हव्य कव्य देने पर दाता को फल नहीं मिलता है ॥१४२॥ विद्वान् ब्राह्मण को

विधिवत् भोजन कराकर दक्षिणा देने पर वह देने वाले और लेनेवाले यानी दोनों यजमान पुरोहित को इस लोकमें और परलोकमें फलका भागी करती है ॥१४३॥ श्राद्धमें परमयत्न करके वेद पारंगत ऋग्वेदी ब्राह्मणको, वा सकल शाखाके ज्ञाता यजुर्वेदी ब्राह्मणको अथवा समाप्ति पर्यन्त सामवेद जानने वाले ब्राह्मणको भोजन करावे ॥१४५॥ इनमेंसे कोई भी ब्राह्मण जिसके श्राद्धमें सत्कारके साथ भोजन पाता है उसके सात पीढ़ी पर्यन्तके पितर तृप्त होते हैं ॥१४६ धर्मज्ञ पुरुष देवकर्म में ब्राह्मणकी परीक्षा न करे परन्तु पितृकर्म (श्राद्ध) में तो यत्न करके परीक्षा करे ॥१४८॥ जो चोर-पतित वा नपुंसक हों, और नास्तिक मतके वा नास्तिकोंकी जीविका खाने वाले हों तो उन ब्राह्मणोंको मनुजीने देवकर्म तथा पितृयज्ञमें अयोग्य अनधिकारी कहा है ॥१५०॥ वेदाध्ययन शून्य ब्रह्मचारी, दुर्बल, ज्वारी, तथा बहुत से यजमानोंको एकसाथ बैठाकर यज्ञ कराने वाले, धन ठहरा कर पूजा करने वाले पुजारी, तथा मांसविक्रेता ऐसे जो निन्दित व्यापार से जीविका करते हों तो उनको देव-पितृकर्ममें न जिमावे ॥१५१॥ १५२॥ वेद न पढ़ने वाला ब्राह्मण तिनकों (तृण-वा-घास) की अग्निके समान निर्जीव हो जाता है, ऐसे ब्राह्मणोंको हव्य और कव्य न देना चाहिये क्योंकि वह राखमें होमा हुआसा वृथा जाता है ॥१६८॥

इत्यादि संक्षेपतासे दिखाये वा कहे गये अधिकारी और अनधिकारी ब्राह्मणों को श्राद्धादि शुभ कर्म्मों में परम यत्नसे ठीक २ देख विचार करके पितरोंके निमित्त भोजन कराना चाहिये । और नीचे बताई गयी विधिसे श्राद्धकर्त्ता और भोक्ता इन दोनों को वैसे ही नियमसे रहना चाहिये। यथा मनु० अध्याय ३ के १८७ से १९० श्लोक तक—

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते।
निमन्त्रयेतत्र्यवरान् सम्यग्विप्रान्यथोदितान् ॥१८७
निमन्त्रितोद्विजःपित्र्ये नियतात्माभवेत्सदा।
नचछन्दांस्यधीयीत यस्यश्राद्धंचतद्भवेत् ॥१८८॥
निमन्त्रितान्हिपितर उपतिष्ठन्तितान्द्विजान्।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते॥१८९॥
केतितस्तुयथान्यायं हव्यकव्येद्विजोत्तमः।
कथञ्चिदप्यतिक्रामन्पापः सूकरतांव्रजेत् ॥१९०॥

अर्थात्—श्राद्धकर्मके प्राप्त होने पर श्राद्धके दिन से एक दिन पहिले और यदि न होसके तो उसीही दिन जिनके लक्षण कहचुके हैं ऐसे तीन अथवा एक ब्राह्मण को सत्कार पूर्वक निमन्त्रण दे, ॥१८७॥ श्राद्ध में निमन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रणके दिनसे श्राद्धके दिनकी रात्रि तक नियमसे रहे अर्थात् स्त्रीसंग आदि न करे और अवश्य करने योग्य काम्य जप आदि के सिवाय—वेदका अध्ययन न करे और

ऐसे श्राद्ध करने वाला यजमान भी इसीही नियमसे रहे ॥१८८॥ क्योंकि—निमन्त्रित ब्राह्मणोंमें पितर अदृश्य रूपसे स्थित होते हैं और प्राणवायुके समान चलते हुएके साथ चलते हैं और बैठने पर समीप बैठते हैं इसलिये उन ब्राह्मणोंको नियमसे पवित्र रहना चाहिये ॥१८९॥ हव्य कव्यमें शास्त्रके अनुसार निमन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रण को अंगीकार करके यदि किसी कारण * से भोजन न करे तो उस पापसे दूसरे जन्म में वह शूकर होता है। इसलिये श्राद्ध करने वाले को भी जिस ब्राह्मणको निमन्त्रण

* जो ब्राह्मण गरीब यजमानका प्रथम निमन्त्रण पाकर पीछे यदि साहूकार धनाढ्य क्षत्रिय आदि आकर निमन्त्रण दे तो लोभवश होकर प्रथम आये उस बिचारे गरीब को छोड़कर धनाढ्यके पास पहिले जावे और असमर्थ यजमान को छोड़कर समर्थवान् यजमान के पास आना अर्थात् वह समर्थवान् यजमान अहंकार और धन के मद से कहे कि-ऐ ब्राह्मण! यदि तुम पहिले मेरे पास श्राद्धभोजनादि खानेको नहीं आते हो तो हम तुमको छोड़कर अन्य किसीको श्राद्ध खिला देंगे और तुमको आगेके लिये देखेंगे अर्थात् पुरोहित करके नहीं मानेंगे ऐसे लोभदायक यजमानके मदरूप वचनों पर लोभित होकर जो न्यायपथका परित्याग करता हुआ प्रथम निमन्त्रण दिये हुए उस गरीब यजमानके पास भोजन करने को जो नहीं आता—वह लोभी—पक्षपाती और डरपोक वा ठग ब्राह्मण उस लोभ वा काहिलता रूप पाप से दूसरे जन्ममें अवश्य ही शूकर होता है॥

दिया हो उसीको ही श्रद्धा (नम्रता) से श्राद्धमें ले आकर भोजन कराना चाहिये ॥ इति ॥

समाजी—श्री पण्डितजी महाराज ! आप श्रीवरोंने तो ठीक ही सत्यरूपसे श्राद्धके योग्य और अयोग्य ब्राह्मणोंका वर्णन किया परन्तु आपके कथनानुसार इस वक्त ऐसा वेद पारंगत पूर्ण पवित्र विद्वान् अब मिलना महाकठिन है । और ऐसे शास्त्रोक्त नियम पालने वाले वेदवेत्ता सदाचारी ब्राह्मणोंके सिवाय अन्य मूर्ख दुराचारी ब्राह्मणको श्राद्धमें खिलाना अवश्य निषिद्ध है—क्योंकि—धर्मशास्त्रके आज्ञानुसार असंस्कृत मूर्ख ब्राह्मणको श्राद्धमें भोजन कराना वैसा ही है जैसा कि भस्म (राख) में घीकी आहुति निष्फल होती है । इसलिये श्राद्ध कैसे सिद्ध हो सकेगा ? ॥

सनातनी—प्रिय महाशयजी ! आप जैसा विचार रखते हो वह निःसन्देह सत्य है—परन्तु इस समयानुकूल आप क्षत्रिय—वैश्य वगैरह प्रथम अपने गुण—आचरणोंकी तरफ भी कुछ ध्यान देकर न्यायसे सोचो और कहो—कि नहीं, केवल ब्राह्मणोंको ही दोषयुक्त ठहरानेका झूठा बहाना करके अपने अवश्य कर्त्तव्य देव—पितृयज्ञादि कर्म करनेसे भागते हो । महाशय जी ! ऐसे आपके [अवश्य कर्त्तव्य कर्म का त्याग (लोप) करने वाले] पाप—रूप निर्बल वचन आप जैसे सच्चे क्षत्रिय वैश्यों के सन्तान के मुख से

निकलें–तो इससे ज्यादा अपने बड़ोंकी [पूर्णभक्ति नम्रताभावसे होनेवाले अश्वमेध राजसूयादि यज्ञोंमें पाई हुई] वीरता और प्रतिष्ठामें धब्बे लगाने वाले और कौनसे वचन बाकी रहे ? ! आ-हा ? ! "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" इस महावाक्य के अनुसार ठीक देखा जाता है कि कलि महाराजके प्रताप से बुद्धि और वीरता तथा नित्य कर्मकाण्डों में प्रेम विपरीत (उलटा) हो गया ? ! ? तौभी हे ऋषि मुनियोंके सन्तानो ! और सच्चे शूरवीर पवित्र क्षत्रिय–वैश्योंके पुत्रो ? अब जरा जागो और विचारूपी आंखसे देखो-सोचो कि हमारे ही जैसे निर्बल संतान पर दयाके भण्डार महर्षि श्रीमनु महाराज ने अपने दयाभाव से अवश्य करने योग्य श्राद्धादि कर्मों की रक्षा होनेमें कलिकालके समय योग्य और अयोग्य ब्राह्मणादिकोंका किस तरहसे निर्णय करके बतलाया है कि—

अन्येकृतयुगेधर्मा–स्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।
अन्येकलियुगेनृणां युगह्रासानुरूपतः ॥ ८५ ॥
तपःपरंकृतयुगे त्रेतायांज्ञानमुच्यते ।
द्वापरेयज्ञमेवाहु–र्दानमेकंकलौयुगे ॥ ८६ ॥

अर्थात्–सत्ययुग में और धर्म, त्रेतामें और, द्वापरमें और तथा कलियुगमें और । त्रेतादि युगों में युगोंकी हीनता (घटती–बढ़ती) होनेसे धर्म और अधर्म की भी विलक्षणता हो जाती है ॥

As the vegitable. kingdom increases in thier beauty colours and nourishment at thier due time, such as" "spring season" and less in the other seasons similarly in the times of Sityayuga spirituality and religions are more Predom inants and very much less in respective Yugos Treta, Dwaper and much less in Kaliyuga"

अर्थात्—जैसे ऋतुओंमें पदार्थोंके स्वभाव बदल जाते हैं तैसे ही युगोंमें भी शक्तियोंके फेरफार से पदार्थोंका स्वभाव बदल जाता है और रस, कस, शक्ति—आकार—उमर और कर्म फल आदि भी युगों के बदल जानेसे बदल जाते हैं। यद्यपि तपश्चर्या—आत्मज्ञान—यज्ञ और दान वगैरह सब कर्म सत्य आदि सब युगोंमें सदा सेवन योग्य हैं तथापि सत्ययुगमें तपश्चर्या प्रधान (मुख्य) और अत्यन्त फलदायक है। त्रेतामें आत्मज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान ही मुख्य फलदायक है। इसलिये वेदशास्त्र पठन और उनके अनुसार धर्म कर्म—अनुष्ठान करनेमें जो हीनता हुई है वह केवल ब्राह्मणों में नहीं किन्तु सब वर्णाश्रमोंमें कलियुगके प्रभावसे समान ही हो रही है। फिर केवल ब्राह्मणोंका ही अधिकार मनुस्मृतिके अनुसार देखा जावे तो किञ्चित् अपने आपकी ओर भी सब लोगोंसे दृष्टि की जावे कि मुझमें विशेष धर्मकी स्थिति तो किनारे रही परन्तु मनुष्यमात्रका सदा आचरणीय सामान्य धर्म भी कोई है या नहीं। किन्तु केवल ब्राह्मणों के ही

अधिकार का निर्णय करने पर और लगाना और अपनी ओर कुछ नहीं देखना यह बुद्धिमानों और न्यायवर्त्ती विचारवानोंकी रीति नहीं है। क्योंकि श्राद्धादि कर्म करने वाले क्या ब्राह्मण क्या और जातियोंके सब मनुष्यमात्र। अर्थात् सब वेदमतानुयाइयोंको सत्-धर्मका आचरण अपने वर्णाश्रमके मुताबिक ठीक २ करना चाहिये। जैसा कि—महाभारत अनुशासन पर्वमें लिखा है कि—

न्यायार्जितधनस्तत्व-ज्ञाननिष्ठोजितेन्द्रियः।
श्राद्धकृत्सत्यवादीच सत्कर्मामुच्यतेनरः॥ १॥

अर्थात् न्यायरीति से जो धनसंचय करता है, ईश्वरके तत्वज्ञानके विचार मे जिसका निश्चय है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको खोटे विषय भोगोंसे रोकाहुआ है अर्थात् गृहस्थाश्रमके धर्मोमें दृढ स्थित है तथा श्राद्धादि देव-पितृकर्म जो सदा करता है और सत्य वचन बोलता है तथा इष्टापूर्त्तादि सत्-कर्म करता है वह मनुष्य सब कोई चाहे किसी भी वर्ण का हो तो जन्म मरणरूप संसारक्लेश से छूट जाता है। यही श्लोक याज्ञवल्क्यस्मृतिमें है परन्तु कुछ भेद है। इस श्लोक में लिखे श्राद्धादि सत्कर्म करने वाले सब मनुष्योंमें जो २ गुण चाहिये सो वे ही लोग न्यायदृष्टि से अपने २ में देखें कि उन में ऊपर लिखे गुण कितने और कहांतक हैं—तो सोचने से निश्चय हो जायगा कि इन गुणोंमें से थोड़ा

अंश भी अब के श्राद्धकर्मादि करने वाले सब मनुष्योंमें कठिनतासे प्राप्त हो सकेगा। तो फिर केवल ब्राह्मणोंके ही धर्म का निर्णय करनेमें कटिबद्ध होकर प्रवृत्त होना और अपनी ओर [कि कैसे २ कुकर्म सेवन करने और कैसे २ अन्यायोंसे धन संचय करना और शास्त्रोक्त सदाचार किंचित् भी कभी आचरण नहीं करना] दृष्टिमात्र नहीं करनी यह कौन न्याय और बुद्धिमत्ताकी बात है। महाशय जी ! ब्राह्मणोंमें तो कोई न कोई कुछ न कुछ वेदशास्त्र पढ़ेहुए और उसके अनुसार अपना धर्म कर्म अनुष्ठान करने वाले शायद मिलही जावें परन्तु ऐसे प्रश्नकर्त्ता महात्मा को अपनी और अपने साथियोंकी ओर दृष्टि करके न्यायसे सोचना चाहिये कि वे लोग सनातनधर्मकी रीति से नित्यकर्त्तव्य धर्म कर्मका अनुष्ठान (सेवन) करना तो जाने दो परन्तु उनके नवीन मतके गुरु के उपदेश किये ग्रन्थों के अनुसार भी कितने संस्कार उन्हों के हुए हैं और होते हैं। और कितना वेद और वेदाङ्गों का तथा और शास्त्रोंका अध्ययन और प्रतिदिनके सन्ध्यादि पंचयज्ञ कर्म कितने किये जाते हैं कि जिन महाशयोंको दो चार वेदमन्त्रोंके स्वर सहित शुद्ध पाठमात्र उच्चारण करनेका ज्ञान नहीं है तो उनका अर्थ जानने की तो क्या बात है। तो इन सब ऊपर लिखे वा कहे कारणोंसे यदि विद्वान् सत्कर्मी पात्र ब्राह्मण जहांतक श्राद्धकर्म करनेके वास्ते

मिलें तहांतक वे अवश्य खोज करके भी श्राद्धकर्ममें लाने योग्य हैं-परन्तु जो समयके अनुसार अधिक उत्तम अधिकारी पात्र ब्राह्मण न मिले तो धर्मरक्षक महर्षि मनु भगवान्‌ने अध्याय २ श्लोक ११८ में-

गायत्रीमात्रसारोऽपि वरंविप्रःसुयन्त्रितः ।
नायंत्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥११८॥

अर्थात्-केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी यदि (सुयन्त्रित) शास्त्रनियमित अर्थात् अभक्ष्य भक्षणादि रहित और व्यभिचारादि कर्मोंसे रहित है तो वह थोड़ा पढ़ाहुआ भी ब्राह्मण समयानुसार अत्यन्त श्रेष्ठ और श्राद्धादि कर्मोंमें योग्य पूजनीय है। परन्तु (अयंत्रित) जो निषिद्ध मद्यमांसादि भक्षण करने वाला और वेंचने वाला है तथा नित्य कर्त्तव्य संध्योपासनादि कर्म नहीं करने वाला और व्यभिचारी वह यदि वेदवेत्ता महान् पण्डित भी हो तो भी वह श्रेष्ठ नहीं और न श्राद्धादि कर्मोंमें लाने योग्य है। अब विचारपूर्वक देखो कि अन्तमें श्री महर्षि मनु भगवान् ने कम से कम केवल गायत्रीमात्र जानने वाले सुलक्षण सुपात्र वैष्णव ब्राह्मण को ही श्रेष्ठ और श्राद्ध के योग्य सिद्ध किया है। इसलिये महर्षि श्रीमनुजीकी आज्ञा से अत्यन्त विद्वान् धर्मज्ञ ब्राह्मणके अभाव में केवल गायत्रीमात्र जानने वाले और सदाचारी सुपात्र ब्राह्मण को ही सत्कारपूर्वक

निमन्त्रण देकर श्राद्धमें श्रद्धासे भोजन कराकर पितृयज्ञको सिद्ध करना हम वेदमतानुयायियोंका मुख्य कर्त्तव्य है। और जंगल वा म्लेच्छादि देशमें सर्वथा ऐसा केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी यदि सुपात्र ब्राह्मण न मिल सके तो—

अलाभेब्राह्मणस्यैव कौशःकार्योबटुःप्रिये।

प्रभासखण्ड वाक्य,।

तथा=विधायवादर्भबटून् आसनेषुसमाहितः।
प्रैषानुप्रैषसंयुक्त-विधानंप्रतिपादयेत्॥१॥

महर्षि श्री देवलस्मृति,

अर्थात्—सुपात्र ब्राह्मण के अभाव में दर्भा की छोटी प्रतिमाएं बनाकर उन को ही ब्राह्मणरूप में कल्पित करके पवित्र आसनों पर बैठाकर श्राद्ध के मन्त्रोंसे (प्रैषानुप्रैष) एव गन्ध—सुगन्ध—धूप दीप नैवेद्यादिकों से अर्थात् गंध (चन्दन) पुष्प धूप दीप भोजनादि को उन कल्पित ब्राह्मणो के प्रति श्रद्धासे अर्पण करके आप ही श्राद्धकर्मका अनुष्ठान पूर्ण करे। यदि वैसा भी न हो सके तो श्रीकात्यायनस्मृतिके वचनानुसार—

आपद्यनग्नौतीर्थेच प्रवासेपुत्रजन्मनि।
आमश्राद्धंप्रकुर्वीत भार्यारजसिसंक्रमे॥ १॥
अनग्निरध्वगोवापि तथैवव्यसनान्वितः।
आमश्राद्धं द्विज.कुर्याद् वृषलस्तुसदैवहि॥ २॥

अर्थात्–आपत्कालमें, तथा अग्नि के न मिल सकनेमें, तीर्थमें प्रवास यानी मुसाफरीमें, पुत्रजन्म के समयमें और रजोधर्म में तथा संक्रान्ति अर्थात् पुण्यकालमें "आमश्राद्ध" यानी कच्चा सीधा लेकर पितरोंके निमित्त यज्ञोपवीत वामपार्श्व करके "स्वधा पितृभ्यः इदं अन्नं समर्पयामि" ऐसा उच्चारण करके सुपात्र सदाचारी गरीब ब्राह्मणके घरमें वह अन्न देकर श्राद्धकर्म पूरा करे परन्तु शूद्रजाति हमेशा "आमश्राद्ध" करे अर्थात् कच्चासीधा संकल्प करके ब्राह्मणोंको दे। यदि इतना भी न हो सके तो–

सर्वाऽभावेक्षिपेदग्नौ गवेद्द्यादथाप्सुवा।
नैवप्राप्तस्यलोपोऽस्ति पैतृकस्यविशेषतः॥ १॥

महर्षि देवलस्मृति॥

अर्थात्–कुछ भी नहीं हो सके तो भी किंचित् कच्चा वा पकाया हुआ भोजन पितरोंके नामसे अग्निमें, अथवा जलमें वा गौको देवे परन्तु पितृकर्म का लोप न करे। और यदि मनुष्य दरिद्री (कंगाल) असमर्थ होनेके कारण इतना भी न कर सके तो—

वृहन्नारदीय पुराणशास्त्रके वचनानुसार–

अथवारोदनंकुर्य्यात्–अत्युच्चैर्विजनेवने।
दरिद्रोहंमहापापी वदेदितिविचक्षणः॥ ॥

वृहन्नारदीय पुराण अध्याय २६॥

इस नारदीय वाक्यानुसार श्राद्धके दिन निर्जन वनमें जाकर "मैं महापापी दरिद्री (कंगाल) हूं"

ऐसे दीन वचन वोलकर पितरोंसे क्षमा मांगे परन्तु पितृकर्मका त्याग न करे। और यदि रोदन करनेमें भी संकोच करे तो—

सर्वाभावेत्रनंगत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः।
सूर्य्यादिलोकपालानामिदमुच्चैःपठिष्यति ॥५७॥
नमेऽस्ति वित्तं न धनं न चाऽन्यत्, श्राद्ध-
स्य योग्यं स्वपितृन्नतोस्मि। तृप्यन्तु भक्त्या
पितरो मयैते भुजौततौवर्त्मनिमारुतस्य ॥५७॥
श्रीवाराहपुराण अध्याय १३ में ॥

अर्थात्—वन में जाकर दोनों भुजाओं को ऊपर करके नम्रता और दीनभावसे हाथ जोड़कर सूर्यादि लोकपालोंके सन्मुख अपनी कुक्षि दिखाकर उच्चस्वर से कहे कि—हेपितृदेवो ! मेरे पास इतना अन्न, धन तथा अन्य कोई भी श्राद्धोपयोगी-पदार्थ कुछ भी नहीं है—इसलिये मैं अपने पितरोंको केवल नमस्कार पूर्वक प्रार्थना करता हूं कि हे सूर्यादि लोकपालो ! इस मेरी भक्तिरूप प्रार्थना से मेरे पितर तृप्त होकर मुझपर प्रसन्न रहें ॥ इति ॥

समाजी—श्रीमान् पण्डित जी महाराज ? यह मुझे आप श्रीयरों ने ऐसा न्यायरूप युक्तियुक्त प्रमाणोंका निर्णय करके वतलाया है कि जिस से अब मुझे कोई भी सन्देह वाकी नहीं रहा और आपत्ति में भी श्राद्ध करनेका ऐसा धर्मशास्त्रोक्त उत्तम सर्व

मान्य मार्ग बतलाया कि बस अब मैं पूर्णकृतार्थ हुआ हूं॥

हे प्रिय परमपूज्य पण्डितजी ! परब्रह्म परमात्मा आप जैसे धैर्यवान् सुशील विद्वान् सत्योपदेशक ब्राह्मणकी सदा प्रतिष्ठा यश बढ़ाये और आप श्रीवरोंको सदा प्रसन्न रक्खे कि जिन श्रीवरोंने नितान्त परमार्थरूप महान् उपकार करके मेरे और बल्कि अन्य मेरे समाजी भाइयों के तथा आस्तिक साधारण सनातनी भ्राताओंके भी अति कठिन सन्देह रूप अन्धकारको प्रबलशास्त्र प्रमाण और अकाट्य सद्युक्तियुक्त वचनों से ऐसे दूर किया है कि जैसे सूर्यनारायणके प्रखर तेजसे संपूर्ण जगत्का अन्धकार नाश व दूर हो जाता है—इसलिये मैं इस श्राद्धविषयमें तो निःसन्देह आप धर्मरक्षकको गुरु समझ कर आप सद्गुरुओंके चरणकमलों में प्रेम से शिर नवाता हूं। हे प्रभो ! मुझपर क्षमा करो और मुझको आशीर्वाद देओ !!

सनातनी—प्रिय महाशय जी ! सदासुखी भव ! आयुष्मान्-भव !!

इति श्री श्राद्धपितृमीमांसायां श्राद्धकर्मणि ब्राह्मणानामधिकाराऽनधिकारनिर्णयने समाप्तोयं षष्ठोऽध्यायः ॥

श्रीसाम्बशिवार्पणमस्तु ॥

ओ३म्—शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

"ॐ—नमोऽन्तर्य्यामिणे"

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

मेरे प्रिय आधुनिक आर्य्यसमाजी महाशयोंको निम्नदर्शित श्राद्धविषयक त्रिंशत् (३०) प्रश्नों के शास्त्रप्रमाण युक्तियुक्त उत्तर देनेके लिये प्रार्थना॥

प्रश्न १—स्वा० दयानन्दजीने सन् १८७५ के सत्यार्थप्रकाशमें "जितने जीवित हों उनके नामसे तर्पण न करे किन्तु जो २ मरगये हों उनके नामसे तर्पण करे" लिखा है सो इसको तुम प्रमाण क्यों नहीं मानते ? । यदि मानते हो तो जीवितोंको श्राद्धतर्पण कहना मिथ्या क्यों नही है । यदि कहो कि स्वा० द० ने ऐसा नही कहा और न लिखा किन्तु छपाने शोधने वालोंने वैसा बनादिया है, तो क्या तुम में से कोई भी समाजी महाशय वेद पुस्तक हाथमें लेकर शपथसे कहदेगा कि यह सत्य है। अर्थात् स्वामीजीने नही लिखा किन्तु छपाने शोधने वालोंने ही मिलादिया ॥

प्रश्न २—जब अथर्ववेद १८ । १ । ४४ ॥ (असुं य ईयुः) मन्त्रांशका अर्थ प्राणवायुमात्र सूक्ष्मदेहधारी पितर निरुक्तके अनुसार सिद्ध हो चुका है तो जीवित स्थूल देहधारियोंमें वह अर्थ कैसे घट सकेगा। क्या उससे मृतपितर सिद्ध नही हैं ? तथा अथर्ववेद

१८ । २ । ४८ (य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्०) जो पितर बड़े अन्तरिक्ष लोक में प्रवेश करचुके सो क्या तुम्हारे जीवित ही पितर अन्तरिक्ष आकाशमें प्रवेश कर सकते हैं ? । यदि नहीं कर सकते तो मृतपितरोंका श्राद्ध तर्पण उक्त मन्त्रसे सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥

प्रश्न ३—जब अथर्ववेद १८ । ३ । ४४ ॥ (अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत) यहां हविष् खानेके लिये उन पितरोंको बुलाया गया है कि जो मरणानन्तर अग्निमें जलाये गयेथे । क्योंकि (यानग्निरेव दहन्स्स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः) जिनको जलाता हुआ अग्नि चाट जाता है वे पितर अग्निष्वात्त कहाते हैं यह अग्निष्वात्त पदका अर्थ शतपथ ब्रा० में लिखा है तब वे अग्निष्वात्त पितर जीवित कैसे हो सकते हैं । इस प्रमाणसे भी मरोंका श्राद्ध होना सिद्ध क्यों नहीं है ? क्या तुम्हारे मतमें जीवित ही जलादिये जाते हैं और क्या जलजाने पर भी वे लोग जीवित ही बने रहते हैं ? यदि ऐसा हो तो दाहकर्म होजाने पर किसी समाजी को क्या जीवित दिखाओगे ? ॥

प्र० ४—अथर्ववे० १८ । ३ । ७२ (ये ते पूर्वपरागताः) जो पहिले पितर पूर्वकालमें व्यतीत होगये उनके लिये भी तर्पण करना चाहिये । क्या इस प्रमाण से मरेहुये पितरों का श्राद्ध तर्पण सिद्ध नही होता ? और क्या ऐसा कथन जीवितोंमें घट सकता है !

प्र० ५—अथर्ववे० १८ । ४ । ४८ । (मृताः पितृषु संभवन्तु) मरे हुए पितर पितृयोनिमें प्रगट हों उन्हींके लिये श्राद्ध तर्पण होता है । क्या यहां मूलवेदमें मृत शब्द नहीं ? और क्या इससे मरोंका श्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं होता ॥

प्र०६—अथर्व० १८ । ४ । ६३ (अधामासि पुनरायातनो गृहान्०) यहां पार्वणादि मासिकश्राद्धमें पितरों का विसर्जन करके महीनेभर बाद फिर बुलाना कहा है। सो क्या जीवित पितरोंको तुम महीने २में एकही वार भोजन देते हो? क्या वे ऐसा करनेसे जीवित रह सकते हैं ? यदि हां कहो तो ऐसे कौन हैं ? और (नमः पितृभ्यो दिविषद्भ्यः०) अथर्व वे० १८ । ४ । ८० । दिवि नाम स्वर्गलोक में रहने वाले पितरोंको यहां नमस्कार कहागया है । सो क्या जीवित ही समाजियोंके पितर स्वर्गमें जाते हैं ? यदि कोई जीवित स्वर्गमें जाते नहीं दीखें तो इससे मरोंका श्राद्ध करना सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥

प्र० ७—क्या तुम लोग (अपराह्णः पितृणाम्) इस शतपथ प्रमाणके अनुसार भूखे पिताको भी दोपहरके बाद ही भोजन दोगे ? और मनुष्यके भोजनका समय मध्यान्ह लिखा है तो क्या तुम्हारे जीवित पितर मनुष्य नहीं हैं ? जब कि मनुष्य हैं तो मनुष्यों और पितरोंका भिन्न समय क्यों रक्खा है ? क्या इससे जीवित मनुष्यों से पितरोंका भिन्न

होना सिद्ध नहीं ? तथा जब शतपथ काण्ड २ । ३ ४ । में लिखा है कि (तिरइववै–पितरो मनुष्येभ्यः) मनुष्योंसे पितर छिपे नाम अदृश्य होते हैं । सो क्या जीवित मनुष्य पितर मनुष्यों से कभी छिपे नाम अदृष्ट रह सकते हैं ? क्या इससे मृतपितरोंके लिये श्राद्ध स्पष्ट सिद्ध नहीं है ? एवं शतपथमें पिण्डदान के बाद पीठ फेर लेना लिखा है सो क्या तुम जीवित पितरोंको भोजन परोस कर उनकी ओर पीठ करदेना ठीक समझते और वैसा ही करते हो ? ॥

प्रश्न ८–यदि आपके ही मतमें स्वामी दयानन्द जीने स्वय संस्कारविधि छपी स० १९४१ के पृष्ठ १०४ समावर्तनसंस्कारप्रकरण में लिखा है कि "हाथ में जल लेकर, अपसव्य यानी यज्ञोपवीत वामपार्श्व करके दक्षिणदिशाकी तरफ मुख करके "ॐ पितरः शुन्धध्वम्" इस मन्त्रसे वह जल पृथ्वी पर छोड़े" सो क्या तुम इससे भी जीवितोंको जलदान मानोगे ! यदि जीवितों का ही तर्पण मानना चाहते हो तो (भूमि पर जल छोड़े) को काटकर (पिताको भूमि में लिटाकर उस के मुख में जल छोड़े) ऐसा क्यों नहीं बना देते हो ? क्या स्वा० द० के ऐसा लिखने से अब भी मरोंका तर्पण मानना सिद्ध नहीं है ? ॥

प्र० ९–संस्कारविधि सं० १९४१ पृ० १९८–गृहाश्रम प्रकरणमें बलिवैश्वदेवविधि–(ओ३म् पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः) इस मन्त्रसे एक ग्रास दक्षिणमें

रखनेको लिखा है सो यह ग्रास वा भाग किनको दिया जाता है ? और दक्षिणमें क्यों धरा जाता है ? क्या इससे मृतश्राद्ध मानना सिद्ध नहीं है ? ॥

प्र० १०—ऋग्वेदादि भूमिकामें स्वा० द० ने "अग्निष्वात्त" का अर्थ अग्निविद्याको जानने वा अग्निसे विशेष कार्य साधन करने वाले अंजनके ड्राईवर आदि किया और आगरे शास्त्रार्थ में स्वा० तुलसीराम आदि समाजी उपदेशकों ने जलेहुए मुर्दा के परमाणु अर्थ किया इन परस्पर विरुद्ध दोनोंमें कौन अर्थ सत्य और दो में कौन एक मिथ्या है ?

प्र० ११ क्या समाजी लोग अग्निष्वात्त पितरों को बुलानेके समय काले२ अंजनके ड्राईवरोंका आवाहन करते हैं अथवा पं० तुलसीरामके किये अर्थानुसार जले हुए मुर्दाके परमाणुओंको (अग्निष्वात्ताः पितरएह गच्छत सदस्सदस्सदत) कहते हैं कि हे जले हुए मुर्दाके परमाणुओ ? तुम लोग यहां आओ, अपने २ आसन पर बैठो और भोजन करो तथा भोजनके बाद हमको बहुतसा धन दे जाओ। सो क्या मुर्दाके जले हुए परमाणु आते, आसनोंपर बैठते, और भोजन करके धन दे जाते हैं ? इससे क्या समाजियों के पितर मुर्दा के जलेहुए परमाणु सिद्ध नहीं हैं ? ॥

प्र० १२—ऋग्वेद भाष्यभूमिकामें स्वा० द० ने प्रतिज्ञा की है कि हम निरुक्त–शतपथादि प्राचीन

आर्षग्रन्थों के अनुकूल वेदार्थ करते और मानते हैं, फिर अग्निष्वात्त पदका अर्थ शतपथ से विरुद्ध मनमाना व्याकरण की स्वरप्रक्रिया से भी विरुद्ध किया है—सो मिथ्या क्यों नहीं ? और ऐसा करनेसे स्वा० द० की पहिली प्रतिज्ञाका खण्डन क्या नहीं होगया? इसका तुम क्या जवाब रखते हो ? ॥

प्रश्न १३—सत्यार्थ—प्रकाश छपे सन् १८८७ के पृष्ठ ९८ वें में स्वामी द० जीने श्राद्धतर्पण का अर्थ करके अखीर में कहा है कि यह जीवितों को है मरों को नहीं, और फिर ऋषितर्पण पितृतर्पण लिखके इस से आगे लिखे अर्थ सिद्ध किये हैं कि—११ ग्यारह प्रकार के पितर ये हैं—

नं० १—जो परमेश्वर परमात्मा और पदार्थविद्यामें निपुण हो वह (सोमसद)

नं० २—जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि के जानने वाले हों वे (अग्निष्वात्त)

नं० ३—जो उत्तम विद्या बुद्धि युक्त उत्तम व्यवहारमें स्थित हों वे (बर्हिषद्)

नम्बर ४—जो ऐश्वर्यके रक्षक महौषधिके पान करनेसे रोग रहित और अन्य के ऐश्वर्य रक्षक, औषधियों को देकर रोग नाशक हों वे (सोमपा) पितर हैं ॥

नम्बर ५—जो मादक (नशेकारक) और हिंसाकारक द्रव्योंको छोड़कर भोजन करते हैं वे (हविर्भुज) पितर ॥

नम्बर ६—जो जानने के योग्य वस्तु के रक्षक और घृत दुग्धादि खाने पीने वाले हों वे (आज्यपा)

नम्बर ७—जिनका अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो वे (सुकालिन्) पितर हैं ॥

नम्बर ८—जो दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करने हारे न्यायकारी हों वे (यम) ॥

नम्बर ९—सन्तानों के अन्न और सत्कार से रक्षक व जनक हों वे (पिता) ॥

नम्बर १०—जो अन्न और सत्कारों से सन्तानों का मान करें वे (माता) ॥

नम्बर ११—अपनी स्त्री, भगिनी, सम्बन्धी और एक गोत्र का तथा अन्य कोई भद्रपुरुष व वृद्ध हो तो उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर पानादि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्ति करना है वह श्राद्ध व तर्पण कहा जाता है ॥ इति ॥

अब समाजी महाशय यहां पर स्पष्टरूप से बतावें कि नम्बर एक १ के पितरों में पदार्थविद्या जानने वाले चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान या अंगरेज, अथवा सभी ही पितर होंगे वा नहीं ? ॥

नम्बर २ दूसरे के पितरों में अग्नि और विद्युत् (यानी बिजुली) आदि को समझकर उससे टेलीग्राम और टलीफोन आदि काम करने व बनानेवाले तारबाबू वगैरह और अग्नि से रेल का अञ्जन तथा और मशीन वगैरह बनाने व चलाने वाले इञ्जिनि-

यर, गार्ड, ड्राईवर और भोइलर फिटर वगैरह आप के पितर होंगे या अन्य कोई ? क्योंकि इस वक्त अग्नि और बिजलीको ज्यादा समझने व काममें लाने वाले तो ये ही उपरोक्त विलायत के महाशय और हिन्दुस्तानके मिस्त्री वगैरह हैं ॥

नम्बर ३ में तो अंग्रेजों के सिवाय और, कोई होंगे ही नहीं । क्योंकि वे ही १०० में ८८ तक पढ़ेहुए और सायन्समे इस वक्त सबसे बढ़े चढ़े हैं कि जिन बुद्धिमानोंकी राह लेकर व उन्होंके रिवाजको पसंद करते हुए अपनी समाजिनी लेडियोंको अंगरेजी लेडियोंके समान छूट घूमने फिरने और जलसों (उत्सवों) में सहस्रों मनुष्यों के वीच बैठने व लेक्चरारी करनेमें स्वतन्त्रता देकर हमारी भारतवीरांगनाओंके सनातन पतिव्रत धर्ममर्यादा को तोड़ते हुए, स्त्रियोंके परम लज्जारूप आभूषणोंको अपने ही हाथोंसे छीन रहे हैं कि जिसका नतीजा अब यह निकल रहा है कि वे समाजिनी विदुषियें नियोग और विधवाविवाह करना मंजूर करके ग्यारह ११ पति तक खसम करना चाहरही हैं और दूसरा खसम तो बहुतेरी खान्दानी समाजिनी विधवाओं ने किया है वल्कि पंडित तुलसीरामादि समाजी उपदेशकों ने तो इस निन्दित, व्यभिचाररूप नियोग वा विधवाविवाह पर और भी जोर लगाकर पचकन्याचरित्रादि * छोटे छोटे ट्रैक्ट रचकर प्रसिद्ध करते हुए उन तप्त विदुषियोंको प्रसन्न किया है । वाह ! वाह ! ! ये ही तो

इन आर्य्याभासियोंके धर्म हैं ! ! ! अफसोस ! और और लज्जा ! हे प्रभो ! हे नाथ ! तू ही भारतवीरांगनाओंके पतिव्रतधर्म व सनातन आर्य्यमर्यादाकी रक्षा कर ॥ अस्तु ॥

नम्बर ४ में शायद डाक्टर और हकीम ही होंगे। क्योंकि वही लोग औषधि जानते व दूसरों को औषधियें देकर आराम करते हैं ॥

नम्बर ५–में सरावगी, वैष्णव, शैव यह होंगे। क्योंकि इन लोगों के बराबर हिंसाकारक मांस और मदिरा आदि मादक द्रव्यों से ज्यादा परहेज दूसरों को नहीं होता ॥

नम्बर ६ में तो सम्पूर्ण संसार ही पितर होगा क्योंकि घी दूध सब ही खाते हैं। वल्कि भंगी चमार आदि और पशु भी दूध पीते हैं। इसलिये घी और दूध खाने पीने वाले सब ही इन समाजियोंके "आज्यपा" नाम वाले पितर होंगे ॥

नम्बर ७ के पितरों में सिर्फ अमीर लोग ही होंगे। क्योंकि उन्हींका सुखरूप अच्छा समय जाता है

और नम्बर ८ में तो सिवाय राजाके कोई हो ही नहीं सकता ? क्योंकि दुष्टों को दण्ड देनेवाला

* इन व्यभिचार प्रचारक निन्दित पुस्तकोंका मुखतोड़ जवाब और सद्युक्तियुक्त खण्डन श्री सनातनधर्मरक्षक विद्यावाचस्पति विद्वद्वर प० भीमसेन शर्मादि महोपदेशकों के रचित "विधवाविवाहमीमांसा" और "पञ्चकन्याचरित्रादि" पुस्तकोंमें देखो ॥

न्यायकारी राजा ही हो सकता है। अब कहिये कि स्वामी जी के लेखानुसार तो संसारभर चाहे कोई जाति हो आप का पितर अर्थात् पिता हुआ और पुत्र का नाम ही न रहा क्या यह बात यथार्थ है? और इसको आप मानते हैं कि नहीं। अगर मानते हैं तो बस खबरदार हो जाइये? व आजसे रिश्तेका नाम मिटा दीजिये क्योंकि जाहिरा देखनेमें अगर्चे वह आपका भाई या भतीजा या लड़का है या कोई दूसरी कम कौम है परन्तु उस ने भी दूध पिया है व अभीतक दूध पीता होगा आजसे उस को पिता ही कहिये और फिर अगर आप के समाजियोंमें से किसी को कोई जाति ऊंच नीच भली बुरी गाली दे या मारबैठे तो इस का बुरा न मानिये क्योंकि वह भी शायद स्वामी जीके लेखानुसार किसी किस्मके पितरोंमेंसे आपका पितर जरूर ही होगा और कदाचित् अगर और किसी नम्बर में न भी आया तो दूध पीने वाले पितरोंमें तो अवश्य ही आवेगा सिवाय इसके अब किसी आदमीकी ताबेदारीमें बल्कि जूतातक उठानेमें आपको परहेज न करना चाहिये क्योंकि संसार में पितृसेवा ही मुख्य * धर्म है

+ वाह!! स्वामीजीने क्याही अच्छा (जीवित पितरोंका) श्राद्ध तर्पण कराया। धन्य भाग्य है उन आधुनिक आर्य्योंके कि जो सम्पूर्ण संसारभर के मनुष्योंको अ-

अगर आप इतने पर कहैं कि पितृशब्दसे पिता का अर्थ नहीं है तो आप ही कहिये क्या होगा ? जरा स्वामी जीका लेख सत्यार्थप्रकाश पृ० ८८ पंक्ति २३ वा उन्हीका यजुर्वेदभाष्य अध्याय १९ को देखलीजिये॥

प्रश्न १४—स० प्र० पृ० १०० में "धन्वन्तरये स्वाहा। सहद्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। ॐ सानुगायेन्द्राय नमः। ओ३म्—सानुगाय यमाय नमः। ओ३म्—वनस्पतिभ्यो नमः। श्रियै नमः। भद्रकाल्यै नमः। इत्यादि लिखकर कहा है कि रेती वा पृथिवी ही पर पत्र विछाकर उन पर पूर्वदिशादिके क्रमानुसार उपरोक्त मंत्र पढ़कर अन्नके भाग यानी ग्रास रक्खे, पीछे जो कोई अतिथि हो उस को खिला देवे और नमक मिलाहुआ अन्न अर्थात् दाल भात रोटी शाक वगैरह उठाकर (६) छै भाग पृथिवीमें धरे॥ इति॥

'हे प्रिय महाशयो ! अब जिद्द और पक्षपात के पर्दे नेत्रों से हटाओ और अपने उपदेशकों से पूछो कि स्वा० द० जीने इन उपरोक्त मन्त्रोंका अर्थ स्पष्टतया क्यों नहीं लिखा ? क्या इस में कोई भेद है क्योंकि और जगह तो स्वामी जी ने एक शब्द भी

पना पिता माता समझकर उनका अत्यन्त प्रेम व श्रद्धासे श्राद्ध तर्पण करते हैं। परन्तु न मालूम कि वह समाजी अपनी स्त्रियोंको (स्वा० द० रचित नम्बर ६ के "आज्यपा" नाम वाले पितरोंमें समझते व मानते हुए भी) क्या मानेंगे या कहेंगे अर्थात् दूध घी खाने के कारण अवश्य ही हम अपनी स्त्रियोंको पितृ-संज्ञा में गिनेंगे॥

अर्थ नहीं छोड़ा है फिर यहां अर्यों का क्यों भोजन
करगये ? क्यों साहव ! इन भागोंसे क्या प्रयोजन है ?
आप तो विद्वानोंका नाम देवता कहते हैं फिर यह
भाग किसके ! क्या वनस्पति और लक्ष्मी रोटी खाती
है या पृथिवी खाने आती है ? ईश्वर मूर्त्तिके सामने
तो भोग रखनेमें आप को बड़ा रञ्ज होता है और
आप पृथिवी जड़ पदार्थको भोग रखते हैं यह क्या
बात है और फिर अनुचरों (लश्कर व सेना) स-
हित इन्द्र, वरुण, यम इत्यादिके नामोंसे रखना और
उन को भाग देना यह तो आप सनातन कथा ले
बैठे, अगर पुरानी नहीं है तो कहिये यम का नाम
यहां भी हाकिम ही का होगा या नहीं ? और जब
शायद वह अनुचरों के सहित आजावेंगे तब कहिये
गरीबका क्या हाल होगा उस का तो एक ही दिन
में दिवाला निकलता है फिर ये रोज २ का नियम
कहांतक चलेगा ॥

प्र० १५—आप तो विद्वानों को ही देवता कहते
हैं फिर कहिये यह भद्रकाली, वनस्पति, जल महर
इत्यादि भी कोई विद्वान् घर २ फिरने वाले हैं जि-
न्हें पृथक् २ भाग देनेको बतलाया है, और जब वि-
द्वान् ही देवता हैं तो यह पन्द्रह सोलह नाम अल-
हदा अलहदा क्यों; क्या उन विद्वानोंके नामके साथ
यह भद्रकाली वनस्पति इत्यादिका विशेषण रहता
है सिवाय इसके इन पन्द्रह सोलह विद्वानोंको रोज
रोज कहांतक कोई खिलावेगा इस पर अगर आप

कहें कि एक २ ग्रास निकालें तो कहिये कि क्या वे एक ग्राससे सन्तुष्ट हो सकते हैं कभी नहीं ! अगर आप कहें कि ये ईश्वर के नाम हैं तो हम कहते हैं कि ईश्वर एक है एक ही भाग निकालना योग्य है और अगर आप कहें कि उनके अनन्त नाम हैं तो नामानुसार भाग भी अनन्त होना चाहिये फिर ये पंद्रह सोलह ही क्यों ? और आपका ईश्वर निराकार है फिर निराकार ईश्वर कैसे इन साकार पदार्थों को खावेगा क्या निराकार ईश्वर को पाञ्च भौतिक प्राणीकी तरह भूंख लगती है ? यदि नहीं कहो तो फिर ये आपके दिये सब भाग व्यर्थ हैं ? अगर्चे हां कहो कि ईश्वर हमारे इस भक्ति को व्यापक रूप से देखकर प्रसन्न होता है तो अब आप ही फैसला करो कि हम सनातनी और आप समाजियोंमें पक्के (कट्टर) मूर्त्तिपूजक कौन हुए ?

प्रश्न १९—(आम्राश्चसिक्ताः पितरश्चप्रीणिता एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा) व्याकरण महाभाष्य के इस प्रमाण से भी मृत पितरोंका तर्पण करना सिद्ध है। तब ऐसे प्रमाण वेदोक्त होने पर भी मरों के श्राद्ध तर्पण मानने में तुम क्यों हिचकिचाते हो। क्या हमने मृत पुरुषों के श्राद्ध तर्पण की सिद्धि में वेदादि के जो अनेक प्रमाण दिये हैं उनके लिये तुम्हारा कोई उपदेशक वा पण्डित हाथ में वेद पुस्तक लेके शपथ कर कह सकेगा कि मृत श्राद्धके लिये ये सत्य २ प्रमाण नहीं हैं ॥

प्रश्न १७—(तृतीयाह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते अथर्व० १८ । २ । ४८) यहां से ऊपर प्रद्यौ नामक तीसरा लोक है जिस में पितर लोग रहते हैं। सो क्या तुम्हारे जीवित पितर कहीं आकाश में लटका करते हैं। और मंत्रमें कहे वे ही पितर हैं जिन के लिये श्राद्ध तर्पण किया जाता है। तब क्या इससे जीवितों के श्राद्ध माननेका खण्डन नहीं होता ?॥

प्रश्न १८—सिद्धान्त शिरोमणि पुस्तक को स्वा० द० ने प्रामाणिक माना है उसमें लिखा है कि (ततः शेषाणि कन्याया यान्यहानितुषोडश । क्रतुभिस्तानितुल्यानि पितृभ्योदत्तमक्षयम् ॥) क्या यह कन्या के सूर्य्य में होने वाले कनागत श्राद्धों के लिये आर्ष प्रमाण नहीं है ? ।

प्रश्न १९—क्या तुम लोगों ने यह मिथ्या कुतर्क नहीं किया है कि राजा कर्ण से चलने के कारण कर्णागत कहाये फिर कनागत अपभ्रंश हो गया । इस से कर्ण राजा के पहिले कनागत श्राद्ध नहीं थे । क्योंकि जब सिद्धान्त शिरोमणि के प्रमाणानुसार कन्यागत शब्द से कनागत हुआ कनागत श्राद्ध सनातन अनादि काल से सिद्ध होने पर तुम्हारा कुतर्क मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं हो गया । क्या अपनी ऐसी २ ऐसी २ मिथ्या कल्पनाओं का निर्मूल खण्डन हो जाने पर अब भी लज्जित नहीं होगे ? ॥

प्रश्न २०-(श्राद्धे शरदः । पा० ४ । ३ । १२ ॥ शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम्) पाणिनि आचार्य के व्याकरण का यह सूत्र है। अर्थ यह है कि शरद् ऋतु नाम कार्तिक में होने वाले श्राद्ध शारदिक कहाते हैं। यहां अन्य ऋतुओं के श्राद्धों का विचार छोड़ के शरदृतु के खास श्राद्धों का प्रमाण होने से क्या इन कनागतों का प्रचार पाणिनि आचार्य से भी पहिले अति प्राचीन कालसे चला सिद्ध नहीं है?॥

प्रश्न २१—यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के दिये श्राद्ध का फल पिता को नहीं पहुंच सकता तो-

मृतानामिहजन्तूनां, श्राद्धचेत्तृप्तिकारणम् ।
जीवतामिहजन्तूनां, वृथापाथेयकल्पनम् ॥

मरे हुए प्राणियों को यदि श्राद्ध का फल मिल सकता है तब जीवित मनुष्य जब मुसाफिरीसे जावे तब घर के मनुष्य श्राद्ध द्वारा उसकी तृप्ति मार्गमें क्यों नही कर सकते। इस नास्तिक चार्वाकके और तुम्हारे मत में क्या भेद है? यदि कुछ भेद नहीतो तुम भी नास्तिक सिद्ध क्यों नही हुए?

प्रश्न २२—तुम कहते हो कि मरे हुए पितादिको जन्मान्तर मे श्राद्ध तर्पण का फल मिलने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण वा उनके हाथकी रसीद नहीं आती तो फल पहुंचता है यह कैसे मान लेवें। तब तुमसे पूछा जाता है कि अपने किये शुभाऽशुभ कर्मों का फल जन्मान्तर में अपने को मिल जाता है इस में

क्या प्रमाण है ! क्या इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण वा रसीद
दिखा सकते हो ? जब नहीं दिखा सकते तो यहां
भी चार्वाक नास्तिक का मत (ऋणंकृत्वा घृतंपि-
बेत्) क्यों नहीं मान लेते हो ? ॥

प्रश्न २३–तुम कहते हो कि मरजाने पर अन्य
के किये कर्म का फल अन्य को नहीं पहुंच सकता
तो यदि कोई राजा रईस दशलाख रुपयों का कि-
सी खास के नाम वा सभा के नाम वसीयत नामा
कर जावे कि इस धन से अनाथालय, सदावर्त्त वा
पाठशाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जा-
या करें, और वे काम ठीक २ वैसे ही हों तो क्या
उन कामों से होने वाले उपकारों का फल उस धन
दाता को जन्मान्तर में नहीं मिलेगा ? यदि कर्त्ता-
ओंको मिलना कहो तो उन का कमाया धन नहीं
है और जिसने वसीयत नामा किया उसको फल न
मिले तो क्या ऐसा पुण्य का काम निष्फल होगा ?
फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कायदे से श्रा-
द्धादि धर्म करनेके लिये पिता अपने पुत्रको धनादि
सर्वस्व सौंपता है तब पुत्र कृत श्राद्धादि का फल
पिता को क्यों नहीं मिलेगा ? ॥

प्रश्न २४–जब कि (आत्मावै पुत्रनामासि)
(आत्मावैजायते पुत्रः) इत्यादि श्रुति और (ग-
र्भोभूत्वेहजायते) (भार्यापुत्रःस्वकातनूः) इत्यादि
स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद वा एकता दि-
खाई है तब तुम फूट रूप भेद वा अन्य २ होने का
झगड़ा क्यों लगाते हो !

उपसंहार में निवेदन

श्रीवर परम पूजनीय श्रातृवर प्रिय भूदेव ब्राह्मणों के चरणारविन्दों में सविनय प्रार्थना यह है कि वे कृपया इस कराल कलिकाल समय का ठीक विचार करके अपने बालकों का वेदानुकूल संस्कार कराकर उन्होंके पूर्ण ब्रह्मचर्यकी रक्षा व पालना करने के लिये ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमों में भेज कर निज मातृ भाषा संस्कृत विद्या का पूर्णतया अध्ययन (अभ्यास) कराने में दिल व जानसे कोशिश करें। जिससे कि वे बालक सुशिक्षित होकर क्रम पूर्वक कर्मकाण्ड—उपासना और ज्ञान रूपी अमूल्य रत्नों से जड़ी हुई तेजोमय स्फटिक मालाको धारण करके सदाचार रूपी ज़िरह (कवच) पहिनकर और ब्रह्म विद्या रूपी संपूर्ण क्लेश नाशक अस्त्र लेकर वर्णाश्रम धर्मानुसार, अशिक्षित अनभिज्ञ कुतर्कवादी युवकों के महामोह रूप व सनातन सन्मार्ग से गिराने वाले शत्रुओं को निर्मूल करते हुए अवयवों (अंग) रूप क्षत्रिय—वैश्यादि द्वारा वेदोक्त धर्म यानी वेदोक्त देव—पितृआदि यज्ञों का विधि पूर्वक ठीक २ प्रचार कराकर शीघ्र ही इस भारत भूमि यानी भारत माता का सौभाग्य बढ़ावें और सनातन धर्म की रक्षा करें !!! ओं तत्सत्—इति शान्तिः ३ ॥

सु० ब्राह्मणों का दास

निवेदक—गोकुलचन्द्र ॥ ठट्टा ॥

वर्त्तमान-स्थान करांची (सिंधु)

॥ समाप्तम् ॥

नवीन पुस्तकों की सूचना ।

१–श्राद्धपितृमीमांसा–यह पुस्तक देवनागरी अक्षर और हिन्दीभाषामें छपा है । इसमें वर्तमान आर्यसमाजियों के जितने (श्राद्ध व पितृयज्ञ) कर्म में सन्देह अथवा आक्षेप होते हैं उन सबोंका प्रश्नोत्तररूपमें अत्यन्त प्रबल प्रमाण तथा सद्युक्तियोंसे ऐसा निवारण किया गया है कि जिनको एकबार भी आदिसे अन्त तक पढ़नेसे थोड़ी बुद्धि वाला भी आस्तिक जन ठीक समझ सकता है कि (श्राद्ध व पितृयज्ञ किस कर्मका नाम है, इसका रहस्य क्या है और वेदादि सच्छास्त्रों में यह कर्म किनका अर्थात् जीवितोंका या मृतपितरोंका दर्शित है ? । पुस्तककी साईज १८+२२ है ॥

[वेदसंज्ञाविचार]–इस पुस्तकमें वेदादि ग्रन्थ और निरुक्तादिसे ब्राह्मणग्रन्थों का वेदत्व सिद्ध किया है । तथा आर्यसमाजियोंके इसके विषयमें दिये प्रमाणों का खण्डन है मू०)॥ पुस्तक नागरी भाषामें है ॥

(३)–[आधुनिक महर्षिकी पोल)–यह ट्रैक्ट श्री १००८ परमपूज्य जगद्गुरु श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश स्वामी शङ्कराचार्यजीके सम्मति पत्र समेत देवनागरी अक्षर हिन्दीभाषामें छपाया गया है । इस में स्वा० दयानन्दसरस्वती (वर्तमान आर्यम्मन्योंके ऋषि गुरुजीका संस्कृत व्याकरण में सत्यवक्तृतामें (अर्थात् उनके सत्यवादी होनेमें) तथा उनके स्वरचित ग्रन्थोंके पूर्वापर विरोध होनेमें खूब ही पोल खोली व दिखायी गई है कि वह स्वामीजी व्याकरणमें कैसे विद्वान् थे ? । मूल्य)॥ डाकखर्च अलग ॥

मिलनेका पता–सेक्रेटरी सनातनधर्म मण्डलान्तर्गत गीता–पाठशाला मुम्बई बाजार करांची सिन्ध तथा
वैद्यराज सेठ मूलचन्द्र (साध) श्रीगिरिधारीजीके मन्दिरके पास ठट्टा—सिन्ध